सत्यनाम

सारदर्शन

अर्थात्

सद्गुरु कबीरसाहबकृत

सारसाखियोंकी टीका



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

सत्यनाम

सारदर्शन

अर्थात्

सद्गुरु कबीरसाहबकृत सारसाखियोंकी टीका

★

जिसको

इन्दौरकविमन्दिराचार्य्य महंत सत्यलोकवासी
स्वामी श्रीशम्भुदासजीसाहबने रचना की

और

कबीरपंथकी ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध संशोधक और
सम्पादक कबीराश्रमाचार्य्यस्वामी, श्रीयुगला-
नन्द बिहारीने पुनः संशोधन किया

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : दिसंबर २०१९, संवत् २०७६

मूल्य : ९० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

सत्यनाम

प्रस्तावना

इस बातको कहनेकी तथा विशेष प्रमाण देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि, सतगुरु कबीर साहेब एक महान् दयावान् सत्य पुरुष थे, इसीसे आपका नाम—"करुणामय कबीर" "करुणासागर-कबीर" संसारमें प्रसिद्ध हुआ-महात्मा-गुरुनानकजी दादूदयालजी, गरीबदासजी, रामचरणजी, इत्यादि परम सन्त लोग आपको इसी नामसे स्मरण किया करते थे इसमें कोई सन्देह नहीं की आपका ध्यान दिन रात सदा दुःखी जीवोंके ही तरफ लगा रहता था और जीवोंका दुःख देख देखकर जो कुछ विचार हृदयमें उत्पन्न होता था उसीके अनुसार कोई साखी शब्द कथन करके आप संसारको सुना दिया करते थे जैसा कि—

जो देखा सो दुखिया तनधरि, सुखिया कोई न देखा।
उदय अस्तकी बात कहतहों, सबका कियो विवेका ।। टे० ।।
बाटे बाटे सब कोइ दुखिया, क्या गिरही वैरागी।
शुकाचार्य दुखहीके कारण, गर्भहि माया त्यागी ।।
योगी दुखिया जङ्गम दुखिया, तपसीको दुख दूना।
आशा तृष्णा सब घट व्यापे, कोई महल नहिं सूना ।।
सांच कहूं तो सब जग खीजे, झूठ कही नहिं जाई
कहे कबीर सोई भये दुखिया, जिन यह राह चलाई

इस दुःखरूपी संसारमें अतीव सूक्ष्मसे सूक्ष्म पिपीलिकासे लेकर कीट पशु पक्षी आदि महान् ब्रह्मापर्यन्त जितने शरीरधारी प्राणिमात्र हैं तिनमें सुखी तो मैंने किसीको भी नहीं देखा, जिस जिसको देखा है सब दुखी ही दुखी देख पडे हैं। अब और प्राणियोंके दुःखकी तो बात ही क्या है ? किन्तु, यह मनुष्य जो विशेष ज्ञानी और सबमें परम श्रेष्ठ गिना जाता है, उसकी भी दशाको देखिये तो कोई कहता है मेरा पेट दुखता है, कोई कहता है मेरी पीठ दुःखती है कोई कहता है, मेरा शिर दुखता है कोई कहता है मेरा पांव दुखता है, कोई कहता है मेरा हार्थ दुखता है, कोई कहता है मेरी नाक दुखती है, कोई कहता है मेरा कान दुखता है, कोई कहता है मेरी आंख दुखती है, कोई कहता है मेरा मुँह दुःखता है, कोई कहता है मुझे भूख नहीं लगती है, कोई कहता है मुझे प्यास नहीं लगती है, कोई कहता है मुझे नींद नहीं आती है, कोई कहता है मुझे क्षुधा बहुत सताती है, कोई कहता है मैं दरिद्री हूं, कोई कहता मेरी नौकरी नहीं लगती है; कोई कहता है मुझे व्यापारमें लाभ नहीं होता है, कोई कहता है मेरे पुत्र नहीं होता है, कोई कहता है मेरा व्याह नहीं होता है कोई कहता है मेरी स्त्री कहना नहीं मानती है इत्यादि अनन्त दुःखोंको कहांतक गिनावें जिधर सुनते हैं उधरसे दुःख ही

दुःखकी आर्त्तनाद सुनाई देती है। सूर्य उदयसे अस्त पर्यन्त और सूर्य अस्तसे उदय पर्यन्त विवेक करके देखो तो एक महानिर्धन रंकसे लेकर परम ऐश्वर्यवान् महान् राज-राजेश्वर पर्यन्त भी किसी न किसी दुःखसे अत्यन्त दुःखी देख पडते हैं। गृहस्थी, विरागी, उदासी, संन्यासी, वनवासी इत्यादि जो जिस मार्गमें प्रवृत्त हो रहा है वह उसीमें किसी न किसी प्रकारके दुःखसे दुःखी हो रहा है और कहांतक कहें महर्षि शुकदेवजी तो संसारके दुःखके डरसे ही बारह वर्षतक माताहीके गर्भमें छिपे बैठे रहे और अन्तमें जब बाहर निकले तब दुःखके ही डरसे भागकर वनको चले गये इसी प्रकारसे सब योगी जंगम दुःखी हो रहे हैं। तिनमें तपस्वियोंको तो दूना दुःख होता है। तथा आशा तृष्णाका दुःख तो सभीके घटमें व्यापक है किसीका हृदय दुःखसे सूना नहीं है। कबीर साहब कहते हैं कि भाई ! मैं सत्य कहता हूँ तो समस्त संसार मुझ पर क्रोधित होता है और झूंठ बात मुझसे कही नहीं जाती है, किन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो क्या ? व्यास वसिष्ठ आदि महर्षि, क्या ? भगवान् बुद्ध, महावीर स्वामी आदि तीर्थंकर क्या ? शंकरस्वामी रामानुज आदि आचार्य्य क्या ? महम्मद मसीह जरथोस्त आदि पैगम्बर जितने बडे बडे महानुभाव महात्मा हुए हैं जिन्होंने संसारमें ये नाना प्रकारके मत पन्थ चलाये हैं वे भी तो महादुःखी ही होकर ये पंथ चलाये हैं।

उक्त प्रकारके दुःखोंसे जीवोंको जब सतगुरुने अत्यन्त क्लेशित देखा तब आपने कृपा करके विविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति और परमशांति अखण्ड सुख प्राप्तिके अर्थ साखियोंमें उपदेश किया है, उन्हींमेंसे चुनी हुई यह साखियोंका कुछ भाग जिसे "सारसाखी" कहते हैं। यद्यपि ये साखियाँ महान् गम्भीर आशय और परम गूढ रहस्यमय हैं कि जिसकी टीका करना विना आपकी कृपा और पूर्ण विद्वत्ताके, ऐसे वैसे मेरे समान साधारण अल्पमतिका काम नहीं है, तथापि आपहीकी अदृष्ट दिव्यशक्तिने मेरे हृदयमें विराजमान होकर जो कुछ अर्थ कथन किया है उसीके प्रतापसे मैंने यह "सारदर्शन" नामक टीका लिखी है। इतना होनेपर भी भूल चूक होना मनुष्यका संभावित और स्वाभाविक धर्म ही है अतएव कहीं, कुछ त्रुटि रह गई हो तो, सर्व विद्वान् सज्जनोंसे अतीव नम्रतापूर्वक सविनय प्रार्थना है कि, क्षमा कीजिये ! और कृपा करके इतना कष्ट और उठाइये कि, एक पोष्ट कार्ड द्वारा, उस त्रुटिको मुझे सूचित कर दीजिये कि, आगामी आवृत्तिमें उसको पूर्ण करके शुद्धतापूर्वक छपाने का प्रयत्न किया जावे, अलमितिविस्तरेण। किम्बहुना बुद्धि वर्येषु ! शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सब सन्तोंका दासानुदास--

कबीर पंथी महोपदेशक महन्त शंभुदास-

आचार्य कबीर मन्दिर-इन्दौर.

सत्यनाम

भूमिका

उस सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वरकी अनिर्वचनीय शक्तिको धन्य है जिसकी बडे-बडे ज्ञानी भी थाह नहीं पासकते । अनेक ब्रह्माण्डोंको क्षणमात्रमें अनायास निर्मित करदेना और भ्रूभङ्गविलाससे उनका लय कर देने आदि दिव्य शक्तिसम्पन्न पारमेश्वरी शक्तिका यथार्थ ज्ञान होना तो मुनियोंको भी दुर्लभ है परन्तु, उसी शक्तिनिधानके अंश-रूप व्यासादि महर्षियोंने अपने साहसिक ज्ञानसे जीवको मायाजालसे मुक्त करने तथा अपने यथार्थ स्वरूपको जानकर नित्य निरतिशय सुख भोगनेके उपायशास्त्र, पुराण, इतिहासादि ग्रंथोंमें विस्तारपूर्वक कथन किये हैं । इतना ही नहीं अपने विशुद्ध अवतारों द्वारा श्रेष्ठ धर्म्मा-चरण करके जीवोंको शुभाचरणकी प्रवृत्ति कराकर इस अनादि अनन्त भवसागरकी महा-भयंकर ऊर्मियोंसे बचाकर श्रेय और प्रेममार्गका प्रतिक्षण उपदेश करना ही उन्होंने अपना अनुकरणीय आचरण रखा था । देशकालानुसार जिस समय जैसे अधिकारी जीव देखे गये उस समय वैसेही उपायोंसे उनका निस्तार करना मात्र अपना लक्ष्य कर मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, श्रीरामकृष्णादि अवतारों द्वारा पतित जीवोंको अपना स्वरूप कर्तव्य दिखाकर परम कारुणिक भगवान्ने संसारसागरकी महाकठिन षट् ऊर्मि आदि द्वारा रक्षा की है ।

जिस समय कोई भी अवतार इस पवित्र भारतवर्षमें विद्यमान रहे इनके दर्शन और उपदेशसे कितनेही महाभाग कृतकृत्य होते रहे, उनके सुकृतोंका जितना धन्यवाद किया जाय उतना थोडा है, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तमोंके दिव्य चरित्र पढकर आज दिन भी श्रीवाल्मीकि, तुलसीदास आदिका उपकार मानकर आस्तिकमात्र प्रेमगदगद हो अपने कर्तव्यमें आरूढ होकर आनन्द लाभ करते हैं । इसी प्रकार सत्य धर्म प्रवर्तक "सत्य कबीर" भी इस कलिकालके जीवोंके उद्धारार्थ बहुत कुछ यत्न कर गये हैं, उनकी अनन्त वाणी संसारमें जीवोंके उद्धार करनेवाली हैं । उनमेंसे ही यह सारसाखियां भी हैं, इन साखियोंमें वेदान्तका जो गुप्त तत्त्व भरा हुआ है उसका आशय समझना बडे बुद्धिमानका काम है । सर्वत्र ऐसे बुद्धिमान् नहीं मिल सकते, इसी लिये इन्दौर कबीर मन्दिरके आचार्य महन्त स्वामी श्री शम्भुदासजीने उक्त साखियोंकी टीकास्वरूप यह सारदर्शन ग्रन्थ बनाया है इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जिस प्रकार इन गूढ साखियोंके समझनेकी सुगमता इस ग्रन्थोंमें की गयी है वैसी अन्यत्र नहीं, मैं इस लोकोपकारी कार्यके लिये उक्त स्वामीजीको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस कृतिकी लोग प्रतिष्ठा करेंगे और इससे लाभ उठाकर अपना श्रेय साधन करेंगे ।

सज्जनोंका कृपाभिलाषी–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

सत्यनाम



अथ सारदर्शन

सद्‌गुरु कबीर साहबकृत "सारसाखियों" की टीका



मङ्गलाचरण

सब विधि मुदमङ्गल करण, हरण अशेष कलेश।
"सत्यनाम" सम नाम नहिं, वरदायक वरदेश ।।१।।

सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहिब मनुष्यमात्रको यह उपदेश देते हैं कि, हे भाई ! सर्वप्रकारके सुख तथा कल्याणका करनेवाला और दुःखमात्रको हरनेवाला "सत्यनाम" के समान अभीष्ट फलदायक इष्टदेव और कोई नाम नहीं है अतएव कहा है कि :—

सत्य कहूं सत्यके समान नहिं धर्म कोई सत्य एक
छोड़ सब बनिज व्यापार है। स्वर्ग पाताल सूर्य्य

---

१ उसी नामकी महिमाको गोस्वामी तुलसीदासने रामायणमें कहा है कि—**"राम भालु कपि कटक बटोरा ! सेतुहेतु श्रम कियो न थोरा ।। नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मनमाहीं ।।"** भावार्थ यह है कि भगवान् रामचन्द्रजी तो लंका जानेके समय समुद्रमें सेतु बांधनेके लिये बहुतसे रीछ और बन्दरोंकी सेना एकत्रित करके बडे परिश्रमसे सेतुबाँध सके थे किन्तु उस **"नाम"** से यह प्रभाव है कि, और इतर समुद्रोंकी तो बात ही क्या है? किन्तु, संसार समुद्र तक भी सूख जाता है इस बातकी ज्ञानवान् पुरुष बुद्धिमें विचार करके देख लेवें कि, नाममें कैसा प्रभाव है ? इत्यादि माहात्म्य वर्णन करते २ आपने यहां तक कह दिया है कि 'कहूँ कहांलग नामबडाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई।" **"कहूँ कहांलग नामबडाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई ।।"** अर्थात् —मैं नामके माहात्म्य को कहां तक वर्णन करूँ ? साक्षात् रामजी भी उस नामकी महिमाका गुणानुवाद नहीं कह सकते हैं।

२ यह भी गोस्वामीजीने कहा है कि **"धर्म न दूसरा सत्यसमाना ।। आगम निगम पुराण बखाना।"** अर्थात् सत्यके समान दूसरा कोई भी धर्म नही है, यह बात केवल मैं ही—

चन्द्रलोक तारागण, सकल संसार यह सत्यके अधार है ।। सत्यहीके खोजहेत नाना मत पंथ चले, जप तप नेम व्रत संयम अचार है । सत्यके विचार बिन बूडे भवधार सब, ताते जगमाहिं सत्यनाम एक सार है ।।

यह मैं सत्य कहता हूं कि सत्यके समान और कोई धर्म नहीं है, एक सत्यको छोड़कर सब वाणिज्य व्यापारके समान है, स्वर्ग, पाताल, सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि केवल लोक लोकान्तर ही क्या ? वरन् यह समस्त संसारका कारोबार सत्यहीके आधारसे चल रहा है, सत्यहीकी खोजके लिये नानाप्रकारके मत पन्थ प्रचलित हुए हैं । जप, तप, नियम, व्रत, संयम, आचारादिका प्रचार हुआ है और जो सत्यकी खोज करनेका विचार नहीं करते हैं वे भवसागरकी धारमें डूब जाते हैं इस कारण संसारमें "सत्यनाम" ही एक सार पदार्थ है अतएव सद्‌गुरुने कहा है कि :—

सत्यनामको सुमिरके; तरिगये पतित अनेक ।
तासे कबहूं न छोडिये सत्यनामकी टेक ।। २ ।।

सत्यनामका स्मरण करके, महान्‌से महान् पाप करनेवाले बहुतसे पापी, संसारसागरसे पार होकर अखण्ड सुखको प्राप्त हुए हैं, इस कारण सत्यनामके स्मरण करनेका नियम, किसी

—नहीं कहता हूं वरन्, वेद-शास्त्रपुराण-सभी कहते हैंजैसे कि श्रुतिमें कहा है '**नह्यस्मानदन्यत् परमस्त्यथ नामधेयं सत्यस्य सत्यमिति ।**" शब्दार्थ (अर्थ) प्रतिज्ञा पूर्वक (सत्यस्थ त्रिकाला-बाध्य जो परमात्माका है उसका (सत्यम् इति) सत्य इस प्रकारका (नामधेयम्) नाम है अर्थात् परमात्माका नाम "**सत्यनाम**" है अतएव (हि) निश्चयसे (अस्मान् परम्) इससे श्रेष्ठ (अन्यत्) और कोई नाम (न अस्ति) नहीं है अर्थात् "**सत्यनाम से श्रेष्ठ परमात्माका और दूसरा कोई नाम नहीं है**—तैत्तिरीयारण्यक प्रपाठक १० अनुवाद ६२ में कहा है कि—"**सत्येन वायुरा वाति । सत्येनादित्यो रोचते दिवि ।। सत्यं वाचः प्रतिष्ठा । सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति**" अर्थात् सत्यहीसे वायु वहती है, सत्यहीसे सूर्य्य आकाशमें प्रकाश करता है, सत्यहीसे वाणीकी प्रतिष्ठा है और सत्यहीसे सब कुछ स्थित है, इस कारण सत्यको सबसे श्रेष्ठ कहते हैं ।

१ महाभारत अनुशासनपर्व्वमें कहा है—"**सत्यं धर्म्मस्तपो योगः सत्यब्रह्म सनातनम् । सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्**" ।। भावार्थ—सत्यही धर्म्म है, सत्यही तप और योग है, सत्यही सनातन ब्रह्म है, सत्यहीको श्रेष्ठ कहते है और कहांतक कहूं यह समस्त संसार सत्य हीसे प्रतिष्ठित है अतएव कहा है कि—"**सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च । सर्वधर्म्माविरोधेन योगेनैतदवाप्यते**" ।। अर्थ यह है कि, सत्यनामही एक निश्चयसे निर्विकार है और केवल इसी एक सत्यनामके योगसे समस्त धर्म्म अविरोधता से एकताको प्राप्त होते हैं ।

समय भी न छोडना चाहिये, अब उस सत्यनामके प्रभावसे कैसे कैसे पातकी तरे हैं ? उनमें एककी कथा सुनाते हैं —

अजामिलकी कथा

अजामिल कन्नौज नगरका रहनेवाला एक ब्राह्मण था कुसंगके कारण एक चाण्डालकी स्वाधीनता स्वीकार करके रातदिन जुवा, मद्य, मांस, चोरी, व्यभिचार इत्यादि अनेक पापकर्म और दुराचार किया करता था, यद्यपि वह थोडा बहुत पढा लिखा भी था किन्तु, विद्या उसके साथ वही काम करती थी जो काम दूध सर्पके साथ किया करता है। सदा दो चार मनुष्योंको साथ लिये मुसाफिरोंको लूट मार किया करता था उसे केवल एक मालिकके नामहीसे कुछ चिढ न थी, वरन् धर्मकर्म नामसे भी वह कोसों दूर भागा करता था। किसी सत्संगी भक्तको कभी देख लेता था तो उसकी बहुत कुछ ठठोली करके उसे दुखी किया करता था।

एक दिन वह कहीं बाहर गया था। सन्ध्याके समय कुछ साधु उसके घरके समीपसे निकले। उस समय आकाश बादलोंसे छाया हुआ था और कुछ २ पानीकी बूंदें भी बरसने लगी थीं। साधुओंने लोगोंसे पूछा हे भाई ! कहीं कोई ठहरनेको स्थान हो तो हमें बताओ हम वहां ठहरेंगे। उनमेंसे दो चार नौजवान जो अजामिलके पडोसमें रहा करते थे, उपहाससे अजामिलके घरकी तरफ हाथ उठाकर, साधुओंसे कहा कि, यह एक ब्राह्मणका घर है, यदि आप लोग इसमें ठहरेंगे तो वह आपलोगोंकी बडी सेवा करेगा। साधुओंका स्वभाव सरल तो होता ही है, वे क्या जानें कि ये लोग हमें ठगके स्थान पर भेजते हैं। साधुओंने तो भक्तका घर जानकर निःसंकोचभावसे उसके घरके एक खाली चौबारेमें अपने आसन जा बिछाये ! वहां कुछ खाने पीनेका प्रवंध तो न करसके थे, किन्तु एक दीपक जलाकर अपने इष्टदेवकी आराधना करनेके पश्चात् उन सन्तोंने कुछ कथा कीर्तन करना आरंभ कर दिया यद्यपि उस अजामिलके घर कभी कोई पडोसी भूलकर भी नहीं जाता था किन्तु उसदिन तो उन महात्माओंकी कथा कीर्तनको सुनकर, आसपासके सैकडों मनुष्य एकत्रित होगये और वे कुछ ऐसे प्रेमानन्दमें निमग्न हो रहे थे कि उन्हें अपने तन बदनकी भी कुछ सुध नहीं थी।

आधी रातके समय अजामिल अपनी स्त्रीसमेत गांवमें आ पहुंचा और दूरहीसे उन साधुओंके गाने बजानेका शब्द सुनकर अत्यन्त क्रोधित होकर लोगोंसे पूछने लगा कि, ये कौन लोग आये हैं ? किसीने उत्तर दिया कि "आज इन साधुओंने आकर तेरा घर पवित्र कर दिया है न जाने इन शब्दोंमें क्या प्रभाव था। सावरी विद्याके मन्त्रका काम करेगये, अजामिलके हृदयमें एक बहुत गहरी चोट लगी और घर पर पहुंचा तो सन्तोंकी प्रेमभरी वाणीको सुनतेही न जाने उसका क्रोध सर्वथा निर्मूल हो गया, उलटा वह तो अपने भाग्यकी सराहना करने लगा कि धन्य है, ! उस अधमोद्धारण परमात्माकी अपार महिमाको कि जिसने आज इन महात्माओंको मुझ महान् पातकीके घर भेजकर इसप्रकारका कीर्तन करा रक्खा है। उस

दुष्टके निकट रहनेसे बुद्धि नष्ट होजाती है इसलिये कि —"दुष्ट संग जनि देहु विधाता। तासे भलो नर्कको बासा"

समय वे महात्मा लोग जो कुछ कीर्तन करते थे उसी आशयका एक भजन कबीर साहिबने कहा है–

जपु मन सत्य नाम सुखदाई । जो तू चाहै आय जगतमें, अपनी मूढ भलाई ।। टे० ।। गर्भवासमें भक्ति कबूल्यो, सो सब सुधि बिसराई। आय पर्‍यो मायाके फन्दे, मोह जाल उरझाई ।। जपु० ।। मात पिता सुत भाई बन्धु तिय, बहिन भुवा भौजाई। अपने अपने स्वारथ कारण, प्रीति करन सब आई ।। जपु० ।। भवसागरमें भटकत भटकत, यह मानुष तन पाई। खोवे वृथा भक्ति विन प्रभुकी, धिक ऐसी चतुराई ।। जपु० ।। कहे कबीर चेत अजहूँ नहिं, फिर चौरासी जाई। पाय जन्म शूकर कूकरको, भोगेगा दुख भाई ।। जपु० ।।

टीका

जपु मन सत्य नाम सुखदाई । जो तू चाहे आय जगतमें, अपनी मूढ भलाई ।। टे० ।।

यह है कि–हे मूर्ख मन ! जो तू इस संसारमें आकर अपनी कुछ भलाई चाहता हो तो परम सुखदाई महामंत्र सत्यनामका जप कर।

गर्भवासमें भक्ति कबूल्यो, सो सब सुधि बिसराई।
आय पर्‍यो मायाके फन्दे, मोह जाल उरझाई ।।जपु०।।

जिस समय तू गर्भवासमें जहां मल मूत्रका स्थान है; वहां उलटा टँगा हुआ; जठराग्नि के तापसे महा व्याकुल हो रहा था तव तूने कहा था कि, "हे प्रभु मुझे इस दुःखसे छुडादो तो मैं आपकी भक्ति करूंगा" किन्तु, यहां आकर तूने वह बात सर्वथा भुलादी और मायाके फन्दमें पड कर माता पिता इत्यादि कुटुम्बी लोगोंके मोहजालमें उलझ गया।

माता पिता सुत भाई बन्धु तिय, बहन भुवा भौजाई।
अपने अपने स्वारथ कारण, प्रीति करन सब आई ।।जपु०।।

माता, पिता, पुत्र, भाई, स्त्री, बहन, भुवा, भौजाई इत्यादि और जितने कुटुम्बी हें सब अपने अपने स्वार्थके कारण तेरे पास आ आकर अपना प्रेम दिखलाते हैं किन्तु अन्त समय तेरे कोई काम आनेवाला नहीं है।

भवसागरमें भटकत भटकत, यह मानुष तन पाई।
खोवे वृथा भक्ति विन प्रभुकी, धिक ऐसी चतुराई ।।जपु०।।

हे मूर्ख ! अनादि कालसे इस संसार-सागरमें पशु, पक्षी, कीट, पतंग इत्यादि योनियोंमें क्षुधा तृषा शीतोष्ण आधि, व्याधि आदि अनेक प्रकारके कष्ट भोगते भोगते अब यह मनुष्य तन प्राप्त हुआ है, जिसके द्वारा यदि तू चाहे तो, समस्त दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होकर, अखण्ड सुख प्राप्त होसकता है, ऐसा अमूल्य शरीर पाकर उसे तू विन प्रभुकी भक्ति व्यर्थ खोरहा है, इस तेरी चतुराई पर धिक्कार है।

कहै कबीर चेत अजहूँ नहिं, फिर चौरासी जाई।
पाय जन्म शूकर कूकरका, भोगेगा दुख भाई ।।

इस लिये सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे भाई ! जो कुछ हुई सो तो हुई किन्तु, तू अब भी कुछ सावचेत (सावधान) होजा अर्थात् अपनी भलाईके लिये कुछ प्रयत्न करले, जिससे कि आगे कुछ दुःख भोगना न पडे, नहीं तो फिर उसी चौरासी लक्ष योनियोंके चक्रमें पडकर शूकर कूकर इत्यादिकी देह प्राप्त कर न जाने क्या २ दुःख भोगने पड़ेंगे।

इन वाक्योंमें प्रेमगंगाका प्रवाह बह रहा था, कुछ ऐसा समाबँधा था कि उस समय वहां जितने मनुष्य थे सबके सब अपने आपेकी सुध भूल गये थे और अजामिलके हृदयमें तो इस भजनकी एक एक कडीने वह काम किया था कि, जो काम लोहेका हथोड़ा पत्थरके साथ किया करता है, भीतरही भीतर पापका पहाड चकनाचूर होगया। तत्काल अजामिलका ध्यान अपनी बुराइयोंकी तरफ गया और मनही मन इस प्रकार पश्चात्ताप करने लगा।

"हाय हाय ! ! मैंने अपनी सारी आयु वृथा गवाँ दी, ऐसा कोई काम मुझसे न बन सका कि, जो आगेके लिये मेरे कुछ काम आता। कुटुम्बी लोग सब अपने अपने स्वार्थके साथी हैं, जिनके लिये मैं ऐसा पवित्र ब्राह्मण जातिमें जन्म पानेपर भी, महानीच चाण्डालके कर्म करता रहा और पाप भी इतने किये हैं कि, जिनका कुछ अन्त नहीं है, हे नाथ ! अब मेरी क्या गति होगी ?" इत्यादि बहुत कुछ पश्चात्ताप करता हुआ वह अपनी स्त्री सहित सन्तोंके पास आपहुँचा। उसको देखतेही वह जितने नगरनिवासी श्रोतागण बैठे थे, सबके सब अवाक् होकर कांपने लगे किन्तु आज वह पहलेका अजामिल नहीं था, उसकी तो कुछ औरही दशा होरही थी।

आतेही सन्तोंके सन्मुख धम्मसे गिरपडा और "त्राहि माम् ! त्राहि माम् !" शब्द पुकारने लगा। सन्तोंने भजन बन्द करके पूछा क्या बात है ? तू कौन है ? क्या कहता है ? वह अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहने लगा, भगवन् ! मैं महान् पातकी प्रसिद्ध ठग दुष्ट डाकू अजामिल हूं। सब लोक मुझसे घृणा करते हैं, आपने आज कैसे दया की ? महात्मा ज्ञानवान् थे कहने लगे, कुछ परवाह नहीं, प्रभुके नाममें भी तो वह शक्ति है कि, महानसे महान् पापी क्यों न हो उसको भी तार देता है। जैसे कि सद्गुरुने कहा है कि —

सुमिरतही सतनामके, पातकपुंज हजार।
कहें कबीर होजात हैं, इक क्षणमें जरिछार।

सत्यनामका स्मरण करतेही महान् पापोंके हजारों ढेर एक क्षणमात्रमें जलकर राख होजाते हैं। इस कारण हे अजामिल ! तेरे भी कानमें सत्यनामका शब्द पडते ही तेरे हृदयकी मलिनता जाती रही और जो कोई शुभ कर्म तूने किसी जन्ममें किये होंगे वे आज उदय हो गये, अब उस नामके प्रभावसे तू मालिकका सच्चा भक्त होकर सद्‌गतिको प्राप्त होगा।

अजामिलने कहा मेरा हृदय बहुत कठोर पाषाणके समान है, मालिककी भक्ति मुझे कैसे प्राप्त होगी ?

सन्तोंने कहा—सत्यनामका हथोडा भी कुछ सामान्य नहीं है वह भी तो ऐसा है कि, तेरे पाषाणके समान कठोर हृदयको कूटकूट ऐसा मोम बना देगा कि जिसका घर बनाकर मालिक उसमें आप स्वयं निवास करेगा।

वहां जितने मनुष्य थे सबके सब विस्मित हो सोच रहे थे कि कहीं यह धोखा तो नहीं हुआ कि, कहां तो अजामिल ऐसा महान् पातकी और कहां यह प्रेम ! अब तो सबने लक्ष-पूर्वक अच्छी तरह उसका मुख देखकर शब्द भी पहुँचाना तब जाना कि, यह तो सचमुच अजामिल ही है। प्रभुकी लीला अपार है, चाहे जो एक क्षणमें वह कर दिखावें।

बातचीत करते करते आधी रात बीच चुकी थी, स्त्रीको कुछ चेत आया जैसे कोई निद्रासे एकाएकी जागकर भडक उठे, इस प्रकारसे कहने लगी कि, साधुओंने कुछ भोजन किया कि नहीं ? सब लोग सुनकर चौंक उठे और कहने लगे कि अरे राम ! इस बातका तो किसीको भी चेत नहीं रहा, साधु कहने लगे कि, कुछ परवाह नहीं परमात्माकी आज यही मौज थी। रात तो इसी प्रकार भजनभावमें व्यतीत हो जायगी, प्रभात उठकर जहां कहीं जायेंगे वहां देखा जायगा, साधु लोग खाने पीने का इतना खयाल नहीं करते हैं।

अजामिलके घायल हृदयपर एक और चोट लगी, मनही मन कहने लगा कि, साधु घरपर आये हुए योंही भूखे जो जायँ यह बात, हाय ! अपराधी अजामिलके सिवाय और कहां हो सकती है ? इस प्रकार विचार करते हुए पति पत्नी दोनों दरवाजा खोल कर घरमें गये। स्त्रीने कहा। इस समय भोजन बनानेमें तो सन्तोंको बहुत कष्ट होगा। जाओ बाजारमें कुछ मिठाई और दही लाकर उन्हें भोजन करवा दो। अजामिल स्त्रीके कथनानुसार तत्काल उघाडेही शिर बाजारको दौडा गया, रात्रि विशेष हो जानेके कारण बाजारमें दुकानें बंद हो गई थीं किंतु उसने एक दुकानदारसे बडी नम्रता पूर्वक कह सुनकर दरवाजा खुलवाया वह दुकानदार भी आश्चर्यमें था कि आज यह क्या बात है अजामिल ऐसी नम्रतापूर्वक प्रेमसे बातें करता है ? अस्तु ! अजामिलने दही और पेडा माँगे, उसने दही पेडा दे दिया, वह लेकर घर पहुँचा और सन्तोंके संमुख धरकर अत्यन्त विनयभावसे कहने लगा भगवन् ! यह स्वीकार कीजिये। खाकाने समय न होनेके कारण उनमेंसे एक दो महात्माओंने इनकार किया, किंतु अजामिलने तत्काल हाथ जोडकर कहा कि, महाराज ! आप यदि इसको स्वीकार न करोगे

तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगा। अतएव जिसप्रकार आपने आकर मेरा घर पवित्र किया है, उसी प्रकार इसे भी स्वीकार कीजिये और मुझे अपनी चरणकी शरणमें लीजिये। साधुओंने उसकी बात मानली, और प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने दही मिठाई स्वीकार करके परमात्माको भोग लगाया।

अभी तक नगरनिवासी भी अपने घरोंको नहीं गये थे कि उन्हें सन्तों के भजनोंमें कुछ ऐसा आनन्द आया था कि उनका जी वहांसे जानेको बिलकुल नहीं चाहता था। महात्माओंने सबको प्रसाद देकर अपने भी कुछ प्रसाद पा लिया और फिर उसी प्रकार भजन भाव करनेमें लग गये, सारी रात्रि इसी प्रकार कथा कीर्तनमें व्यतीत हुई, प्रभात होते ही सन्तोंने आसन समेटे, अपने २ दण्ड कमण्डलु लेकर चलनेको उद्यत हुए, इतनेही में अजामिल उनके चरणोंमें गिर पडा और रोकर कहने लगा भगवन्! मेरा उद्धार करते जाइये। महात्मा तो परम दयालुही होते हैं देखा कि यह अभी "नारायण!" नाम जपनेका अधिकारी है, कानमें कह दिया कि "नारायण नारायण" सदा जप किया कर इसीसे तेरा उद्धार हो जायेगा और चलते समय उसे यह भी कह गये कि तेरे यहां एक पुत्र उत्पन्न होगा उसका भी नाम तू नारायणही रखना। यद्यपि अजामिल चाहता था कि महात्मा लोग दो चार दिन और ठहरें किन्तु वे तो उसे उक्त उपदेश देकर वहांसे चलेही गये।

अब तो उस नामके प्रतापसे उसका जीवन बदलता गया दिन प्रतिदिन उसमें कुछ अद्भुत् प्रकारका परिवर्तन होने लगा; न तो अब लूट मारसे काम रहा न चोरीसे वास्ता, अजामिल तो कुछसे कुछ बनकर औरका और ही होगया, जो लोग पहले उससे डरते और घृणा करते थे वे सब अब प्रेम और स्नेह करने लगे, बुराइयां क्रमशः सब एक एक करके दूर होगई और कहाँ तक कहें उसका तो जीवनही सर्वथा प्रेममय होगया, जैसे कि सद्गुरु कबीर साहबने कहा है कि—

मनपक्षी तब लग उडे, विषयवासना माहिं।
प्रेम बाजकी झपटमें, जब लग आवे नाहिं॥

मनुष्यका मनरूपी पक्षी तभीतक विषयवासनामें इधर उधर उडा उडा फिरता है, जब तक कि मालिकके प्रेमरूपी बाजकी झपटमें नहीं आता है जहां मालिकका प्रेम इसके निकट आया तहां फिर यहे स्थिर हो जाता है। और फिर उस प्रेमको छोडकर किसी और ठिकाने नहीं जा सकता है।

अजामिलकी तो लौ अब रात दिन नारायणके नाममें लग गई। थोडे ही दिनों में उसके एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, उसका नाम उसने नारायणही रखा और बडे प्रेमसे उसका पालन पोषण करता रहा, कुछ दिनोंके पश्चात् आयु अधिक होनेके कारण वह कुछ बीमार तो अवश्य होगया था, किन्तु उसके हृदयमें पूर्ण शान्ति थी, निदान अन्तसमय आ पहूँचा, नेत्र बन्द किये नारायण! नारायण! रटता रहा। जिन्हें उसकी साधुओंसे दीक्षा लेनेकी घटना मालूम थी, वे तो जानते ही थे कि, अजामिल अपने गुरुके दिये हुए मंत्रका जप कर रहा

और जो नहीं जानते थे वे तो यही समझते थे कि, अजामिलका अपने पुत्रपर बहुत मोह है, इस कारण उसे पुकार रहा है, इसीप्रकारसे जब उसके प्राण शरीरसे प्रयाण करने लगे तब अन्तमें फिर उसने एकबार "नारायण" कहकर आँखें बन्द कर लीं और उसकी आत्मा पर-लोकमें जाकर परम शान्तिको प्राप्त होगई।

इस प्रकारका एक महान् बिगडे हुए मनुष्यके सुधारका तमाशा तो उस मालिकके नामके प्रभावने दिखा दिया है और ऐसे मायाविशिष्ट नाम तो उस मालिकके अनन्त हैं, जैसे सद्गुरुने कहा है कि —

ईश्वर नारायण हरि, राम कृष्ण घनश्याम।
शिव गणेश जाके सकल, मायाकल्पित नाम ।।

अनेक प्रकारका ऐश्वर्यवान् होनेसे कोई तो उसे "ईश्वर" कहते हैं और "नारा" कहते हैं जलको, "अयन" कहते हैं स्थानको, जलमें स्थान होनेसे कोई उसे "नारायण" कहते हैं। पापोंके हरण करनेवाला होनेसे कोई उसे "हरि" कहते हैं। घट २ में रमण करता है इस कारण कोई उसे "राम" कहते हैं। श्यामवर्ण होनेसे कोई उसे "कृष्ण" कहते हैं। मेघके समान श्याम होनेसे "घनश्याम" कहते हैं। कल्याण और मंगलकर्ता होनेसे कोई उसे "शिव" कहते हैं। गण-समूहका ईश–स्वामी होनेसे कोई उसे "गणेश" कहते हैं। इत्यादि सब उसके माया उपाधिसे कल्पित नाम हैं यथार्थ नाम नहीं हैं। यथार्थ नाम तो उसका "सत्यनाम" ही है। इसीसे कहा है कि —

जगमायाकी ज्योतिने, दीन्हों सत्य[१] छिपाय।
सतगुरु ज्ञान दिनेश विन, को तोहि सके हटाय ।।

संसारी मायाकी चमकदमकने सत्यको छिपा दिया है उससंसारी मायाको बिना गुरुके (ज्ञानरूपी सूर्य्यके) और कौन हटा सकता है? तात्पर्य्य यह है कि माया उसे कहते हैं कि जो अपने आवरणसे सत्यको आच्छादित करलेती है, और आप उसी सत्यके आश्रय अपना रंगढंग नाम रूप, कभी कुछ कभी कुछ समय समय पर अदलबदल किया करती है, अतएव जबतक मनुष्यकी दृष्टि बाहरी नाम रूपके तरफ है तबतक उसको उस नामरूपके भीतर छिपा हुआ जो सत्यपदार्थ है उसका ज्ञान नहीं हो सकता है। जैसे बाहरी पदार्थ घर है उस घरके भीतर उसका स्वामी है, बाहरी पदार्थ डब्बी है, डब्बीके भीतर रत्न है, बाहरी पदार्थ छिलका है छिलकेके भीतर सार है, बाहरी पदार्थ चर्म, मांस हाड इत्यादि अनेक अपवित्र पदार्थोंकी बनी हुई देह है, देहके भीतर आत्मा है, इसी प्रकारसे कहां तक गिनावें जो कुछ

१–"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्म्माय दृष्टये" शब्दार्थ–हे (पूषन्) सूर्यदेव! (हिरण्मयेन) चमकदार (पात्रेण) ढकनेसे (सत्यस्य मुखं) सत्यका स्वरूप (अपहितं) ढकाहुआ है अतएव (सत्यधर्माय दृष्टये) सत्य धर्म देखनेके लिये (तत्) उस चमकदार ढकनेको (त्वम्) तुम (अपावृणु) अलग करो।

बाहरी पदार्थ नामरूप है सो सब माया है और वह माया बिना सद्गुरुकी कृपा कदापि समझनेमें नहीं आती है, क्योंकि, परमात्मा भी तो उसी मायाके अपने आश्रित करके अनेक प्रकारके अवतार धारण करता है जैसे कहा कि--

चौबीस अवतार

अज[१] अविनाशी अखिलपति, परम पुरुष करतार।
मायायुत प्रगटचो जगत, धरि चौबिस अवतार॥

अज (जो कभी उत्पन्न नहीं हुआ) अविनाशी (जिसका कभी नाश नहीं होता है) अखिलपति (जो समस्त संसारका स्वामी है) ऐसा जो परम पुरुष (परमात्मा) कर्तार (विश्वका निर्माण करनेवाला) है सो मायाके योगसे वही चौबीस अवतार धारण करके संसारमें प्रगट हुआ है, उसमें से—

(१) पहला मत्स्य अवतार है, जिसने शंखासुरको मारकर वेदोंका प्रकाश किया है।

(२) दूसरा कच्छ अवतार है, जिसने महिषासुरको मारा है और क्षीरसागरको मथकर चौदह रत्न निकाले हैं।

(३) तीसरा अवतार वराहका है, जिसने हिरण्याक्षका वध किया है और विष्ठामें छिपी हुई पृथ्वी बाहर निकाली है।

(४) चौथा अवतार नृसिंहका है, जिसने हिरण्यकश्यप दैत्यका उदर विदीर्ण करके प्रह्लादकी रक्षा की है।

(५) पांचवां अवतार वामनका है, जिसने राजा बलिको छला और तीन हाथ पृथ्वी मांगकर तीनों लोक माप लिये और उसे पातालको भेज दिया।

(६) छठा अवतार परशुरामजीका है, जिन्होंने सहस्रबाहु दैत्यका वध किया और इक्कीसवार पृथ्वीको निःक्षत्री किया, तथा पिताकी आज्ञासे माताका शिर काट लिया है।

(७) सातवां आवतार श्रीरामचन्द्रजीका है, जिन्होंने समुद्रमें सेतु बांधा तथा रावण और बालिका वध किया है।

(८) आठवां अवतार श्रीकृष्ण भगवान्‌का है, जिन्होंने दन्तवक्र तथा कंसका वध किया है और सोला सहस्र गोपियां तथा आठ पटरानियोंके साथ भोगविलास करते हुए भी आप ब्रह्मचारी ही समझे गये हैं।

(९) नववां अवतार बौद्धजीका विना हाथ पाँवका है जिन्होंने रक्तबीज दैत्यको मारा और जातिपांतिका भेद दूर किया है।

१-भगवान् श्रीकृष्णजीने गीतामें कहा है : "अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया अर्थजन्म रहित अविनाशी प्राणियों का स्वामी होकर भी मैं प्रकृतिको अपने आश्रित करके अपनीही मायासे प्रकट होता हूँ।

(१०) दशवां अवतार निष्कलंकीका, सम्भल मुरादावादमें किसी वैष्णव ब्राह्मणकी कुवाँरी कन्यासे होनेवाला है जो कलिजर दैत्यको मारेगा। उक्त दश अवतार तो भगवान्के मुख्य गिने जाते हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त और चौदह उप अवतार हैं तिनमें से—

(११) पहला अवतार स्वयम्भुवमनुका है जो जगत्की व्यवस्था करनेको हुआं था।

(१२) दूसरा अवतार महर्षि नारदजीका है, जो भक्तिका मार्ग दिखानेको प्रकट हुआ है।

(१३) तीसरा अवतार विष्णु सन्तोषीका है, जो विवेक करनेको हुआ है।

(१४) चौथा अवतार सनकादिकोंका है, जो सदा पांच वर्षके बाल्यावस्थामें रहते हैं।

(१५) पांचवां अवतार मोहनीरूप है जो दैत्योंसे छल करके अमृत लेनेके लिये क्षीरसागरमें हुआ है।

(१६) छठा अवतार कपिलजीका है, जो कर्दम ऋषि और देवहूतीके मेलसे हुआ है जिन्होंने सांख्य शास्त्र बनाया और अपनी माताको उपदेश किया है।

(१७) सातवां अवतार व्यासजीका है, जिन्होंने वेदोंको विभक्त किया और अठारह पुराण बनाये हैं।

(१८) आठवां अवतार दत्तात्रेयजीका है जिन्होंने चौबीस गुरु करके संसारको यह उपदेश दिया है कि, किसी एकही गुरुके विश्वास पर न बैठे रहना चाहिये, जहां तक हृदयमें शान्ति न प्राप्त हो तहां तक गुरु करते जाना चाहिये।

(१९) नववां अवतार राजा पृथूका है, जिसने पृथ्वीको गऊ बनाकर दुही और औषधियें निकालीं।

(२०) दशहां अवतार हयग्रीवका है जो मधुकैटभ दैत्यके मारनेको हुआ है।

(२१) ग्यारहवां अवतार बद्रीनारायणका धर्म भार्य्यासे तप करनेके लिये हुआ है।

(२२) बारहवां अवतार हंसका सनकादिकोंके प्रश्नोंका उत्तरदेनेको हुआ है।

(२३) तेरहवां अवतार धन्वन्तरिका रोग नाश करनेको हुआ है।

(२४) चौदहवां अवतार यज्ञमय इन्द्रकी कन्यासे यज्ञ करनेके लिये हुआ है।

ऐसे दश मुख्य और चौदह उप अवतार पुराणोंमें विष्णुके वर्णित हैं सो सब मायिक हैं तथा विष्णु यह नाम भी मायाकी उपाधिहीसे परमात्माका रखागया है सो सद्गुरुने स्पष्टतासे समझाकर कहा है कि

लक्ष्मी काल सरस्वती, ब्रह्मा विष्णु महेश।
रज सत तम गुण भेदसे, कहे कबीर सँदेश॥

सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण इन्हीं तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाको प्रकृति, प्रधान आदिशक्ति, जगज्जननी, माया, महामाया इत्यादि कहते हैं तिसमें सतोगुणी मायाको महा सरस्वती कहते हैं, जिसको अपने आश्रित करके परमात्मा वेदोंको निर्माण करता है और सृष्टि रचनेसे ब्रह्मा कहलाता है। तथा रजोगुणी मायाको महालक्ष्मी कहते हैं, जिसको अपने

आश्रित करके परमात्मा सृष्टिका पालन पोषण करनेसे, लक्ष्मीपति विष्णु कहलाता है और तमोगुणी मायाको महाकाली कहते हैं जिसको अपने आश्रित करके परमात्मा सृष्टिका संहार करनेसे महादेव कहलाता है। सो समाचार कबीर साहिब कहते हैं, अतएव यह माया स्थिर-रूपसे कदापि नहीं रहती है और इसका जो स्वामी है वह सदा अखण्ड एकरस बना रहता है इसीसे उसको "सत्यनाम" कहते हैं। सद्गुरुने बीजकमें एक शब्द भी कहा है---

सन्तो आवे जाय सो माया

है प्रतिपाल काल नहिं वाको, ना कहिं गया न आया ।। टे० ।। क्या ? मकसूद मच्छ कच्छ होना, संखासुर न सँहारा। है दयाल द्रोह नहिं वाको, कहो कौनको मारा ।। वह करता नहिं वराह कहायो, धरणी धरे न भारा। ये सब काम साहिबके नाहीं, झूठ कहे संसारा ।। खंब फारि जो बाहर होई, ताहि पतीज सब कोई। हिरणाकुस नख उदर बिदारा, सो करता नहिं होई ।। वामन रूप न बलि को जांचा, जो जांचा सो माया। बिना विवेक सकल जग जँहडा, माये जग भरमाया ।। परशुराम क्षत्री नहिं मारा, ई छल मायहि कीन्हा। सत्गुरु भक्ति भेद नहिं पायो, जीवन मिथ्या दीना। सिरजनहार न व्याही सीता, जल पषान नहिं बन्धा। वे रघुनाथ एककै सुमिरें, जो सुमिरे सो अन्धा। गोपी ग्वाल न गोकुल आये, करते कंस न मारा। है मिहरबान सबहिनको साहिब, नहिं जीता नहिं हारा ।। वह कर्ता नहिं बौद्ध कहायो, नहीं असुरको मारा। ज्ञानहीन कर्ता कहि भरमे, माया जग संहारा ।। वह कर्ता नहिं भया कलंकी, नहीं कलिञ्जर मारा। ई छल बल सब माये कीन्हा, यती सती सब टारा ।। दश अवतार ईश्वरी माया, कर्ताकै जिन पूजो । कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, उपजै खपै सो दूजो।

है तो स्पष्ट ही किन्तु अर्थ भी किये देते हैं—

सन्तो ! आवे जाय सो माया ।
है प्रतिपाल काल नहिं वाको न कहिं
गया न आया ।। टे० ।।

सद्‌गुरु कहते हैं कि, हे सन्तो ! यह जो आने जानेवाला असत् जड दुःखरूप परिवर्तन-शील पदार्थ है सो माया है और मालिक तो सबका पालन करनेवाला सदा अखण्ड एकरस सच्चिदानन्द है वह किसी कालमें न कहीं गया है न आया है ।

क्या ? मकसूद मच्छ कच्छ होना, संखासुरन सँहारा ।
है दयाल द्रोह नहिं वाके, कहो कौनको मारा ।।

मालिकको मच्छ कच्छ अवतार धारण करनेसे क्या प्रयोजन है ? और न उसने संखासुरका संहार किया है, वह तो परम दयालु है किसीसे भी उसका द्रोह नहीं, फिर कहो ? उसने किसको मारा है ।

वह कर्ता नाह वराह कहायो, धरणी धरे न भारा ।
ये सब काम साहिबके नाहीं, झूठ कहे संसारा ।।

वह मालिक वराह नहीं कहलाया है, और न उसने पृथ्वीका बोझ अपने मस्तकपर उठाया है, संसारी पुरुष उस पर वृथाही आरोप लगाते हैं कि परमात्माने वराह रूप धारण करके विष्ठामें छिपी हुई पृथ्वी उठाकर बाहर निकाली है ।

खंभ फारि जो बाहर होइ, ताहि पतीजे सब कोइ ।
हिरणाकुश नख उदर विदारे, सो कर्ता नहिं होइ ।।

खंबको फाडकर नृसिंहरूप जिसने धारण किया है जिसको संसारी लोक मालिक जानते हैं और यह भी जानते हैं कि उस मालिकनेही हिरण्यकश्यप दैत्यका उदर विदीर्ण किया है तो, जिसने नखके उदर विदीर्ण किया है वह मालिक नहीं है ।

वामन रूप बलिको जांचे, जो जांचे सो माया ।
बिना विवेक सकल जग जहडा, मायेजग भरमाया ।।

वह मालिक छल करके राजा बलिसे याचना करनेको नहीं गया है क्योंकि, छल करना मालिकका काम नहीं है मायाका काम है किन्तु, विना विवेकके सब संसार भ्रममें पडा है मायाही ने सबको भ्रममें डाला है ।

परशुराम क्षत्री नहिं मारा, ई छल मायहि कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं पायो, जीवन मिथ्या दीन्हा ।।

संसारी लोग कहते हैं कि मालिकनेही परशुरामका अवतार धारण किया है और क्षत्रियोंको मार कर इक्कीसवार पृथ्वी निःक्षत्री करदी है, सो यह काम मालिकका नहीं है, ये

छल बल सब मायाहीने किया है, किन्तु, बिना सद्‌गुरुकी भक्तिके इस बात के भेदको नहीं जानते हैं और यह भेद जाने बिना मनुष्य अपना जीवन वृथा खोते हैं।

सिरजनहार न व्याही सीता, जल पखान नहिं बन्धा।
वे रघुनाथ एककै सुमिरे, जो सुमिरे सो अन्धा।।

न तो उस मालिकके साथ जनकनन्दिनी जानकीजी का विवाह हुआ है और न उसने समुद्रमें पाषाणका सेतु बांधा है। जो कोई उस मालिकको तथा रामचन्द्रजीको एक जानकर स्मरण करता है, वह बुद्धिरूपी नेत्रोंसे रहित अन्धा है।

गोपी ग्वाल न गोकुल आये, करते कंस न मारा।
है मिहरबान सबनको साहिब, नहिं जीता नहिं हारा।।

वह मालिक गोपी ग्वालोंका रूप धारण करके गोकुलमें नहीं आया है और न उसने कंसको वध किया है। वह तो परम दयालु सर्व प्राणिमात्रको पालन पोषण करनेवाला न किसीको जीतता है और न किसीसे हारता है।

वह कर्ता नहिं बौध कहाये, नहीं असुरको मारा।
ज्ञानहीन कर्ता कहि भर्मे, माया जग संहारा।।

उस मालिकने बौद्ध अवतार धारण करके रक्तबीज दैत्यको नहीं मारा है, मायाहीने मारा है किन्तु अज्ञानी लोग मायाहीको भ्रमसे मालिक जान रहे हैं।

वह कर्ता नहिं भयो कलंकी, नहीं कलिञ्जर मारा।
ये छल बल सब मायहि कीन्हा, जती सती सब तारा।।

उस मालिकने तो न कलंकी अवतार धारण किया है और न कलिञ्जर दैत्यको मारा है। ये छल बल तो समस्त मायाहीने करके यती सती सबको डिगा दिया है।

दश अवतार ईश्वरी माया, कर्ताकै जिन पूजा। कहैं
कबीर सुनो हो सन्तो, उपजै खपै सो दूजा।।

अतएव सद्‌गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! उक्त जो ईश्वरी दश अवतार हैं। सो माया के हैं जिन्हें संसारी लोग मालिक जानकर पूजन करते हैं किन्तु, मालिक उत्पन्न नाशवाला नहीं होता है। उत्पन्न नाश होनेवाला मालिकसे भिन्न कुछ औरही पदार्थ है।

अब यहां यह शंका होती है कि प्रथम तो कहा कि वह मालिकही संसारमें अनेक अवतार धारण कर प्रगट होता है और फिर कहा है कि जितने अवतार हैं सब मायाके हैं इसमें कौनसी बात सत्य है? इनका उत्तर तो पहिलेही कह दिया गया है किन्तु फिर 'कबीर' साहबने अच्छी तरह समझानेके लिये कहा है कि :—

माया ऐसी प्रबल है, तजि मलिककी छाप।
बनकर बैठी जगतमें, करता धरता आप।।

गुरु कहते हैं कि, यह माया महारानी इसप्रकारकी महती बलवती है कि, मालिककी छाप (सिक्का, निशान) अर्थात् पहचानको भी अपने आवरणसे त्याग करा दिया है और आपही संसारमें मालिकके स्थान पर करता धरता बनकर बैठगई है, इसकी एक कथा महाभारतके बांचनेवाले पौराणिक लोग कहा करते हैं कि :—

एक दिन महाराजा धर्मराज युधिष्ठिर राजसभासे निवृत्त होकर अंतःपुरमें गये वहां देखते हैं तो महारानी द्रौपदी नहीं है, कभी ऐसा नहीं हुआ था इस कारण धर्मराज मनमें चिन्ता करने लगे कि, आज द्रौपदी कहां गई ? ऐसी चिंता करते २ शून्य होकर आप पलँग पर बैठ गये इतनेमें थोडी देरके पश्चात् महारानी द्रौपदी वहां आ पहुँची किन्तु आज न तो उन्होंने महाराजाको सदाके अनुसार नमस्कार किया न प्रणाम और विना आज्ञा लियेही पलँगपर बैठगई देखकर धर्मराज विस्मित हुए और मनमें विचार करने लगे कि नित्य तो यह मुझे प्रणाम करती थी, चरणस्पर्श करती थी और आज्ञा लेकर बैठती थी । यह क्या बात है ?, आज तो उसमेंसे एक भी बात नहीं है, ऐसा विचार करतेही उनके हृदयमें द्रौपदीका गुप्त प्रताप विदित हो गया तत्काल वे पलँगसे उठ खडे हुए तब तो महारानी द्रौपदी पलँगपर लेट गई और धर्मराजसे कहा कि मेरे पांव दाबो । द्रौपदीकी आज्ञानुसार महाराज युधिष्ठिर उसके पांव दाबने लगे, इतनेहीमें फिर द्रौपदीने कहा कि पहले महलके सब दरवाजे खिडकी खोलकर उनके चिक पडदे हटादो फिर पांव दाबना ।' तत्काल द्रौपदीकी आज्ञानुसार धर्मराज उठे और महलके सब दरवाजे खिडकियें खोलकर उनके चिक पडदे हटादिये और आकर-आप स्वयम् द्रौपदीके पांव दाबने लगे ।

इतनेहीमें उनके छोटे भाई भीमने बाहरसे आकर देखा कि महाराज धर्मराज द्रौपदीके पांव दाब रहे हैं । यह देखकर यह शून्य होगये और एकान्तमें जाकर मनमें कहने लगे कि, आज ये क्या बात है ? कि महाराजा धर्मराज अपनी स्त्री देवी द्रौपदीके पांव दाब रहे हैं ? कहीं पागल तो नहीं हो गये ? अथवा आज इनमें कुछ अधर्मका प्रवेश तो नहीं होगया है ? कुछ समयझमें नहीं आता । बडे दुःखकी बात है कि, जब सतीके साथ मेरे रहनेकी बारी आवेगी तो मुझे भी इसके पांव दाबने पड़ेंगे ? यह काम तो मुझसे कदापि नहीं हो सकेगा क्योंकि एक तो पांव दाबना तिसमें भी स्त्रीके, भला ! भीमके जो हाथ रणमें शत्रुओंको दिखानेके हैं ? क्या वे हाथ कभी एक स्त्रीके पांव दाब सकेंगे ? कदापि नहीं, किन्तु क्या किया जाय ! धर्मराजने आज तो यह प्रथा चलाई है, इसको मैं भीकैसे तोडूंगा ? अब मुझे क्या करना चाहिये इस विषयमें किससे पूछना चाहिये ? इत्यादि बहुत कुछ सोच विचार करनेके पश्चात् भीमसेनने इस बातको श्रीकृष्ण भगवान्से जाकर कहनेका निश्चय किया। रात्रि होतेही भीमसेन कृष्ण भगवान्के डेरेपर पहुँचे और द्वारपालसे सूचना कराकर डेरेके भीतर घुसे, देखते हैं तो श्रीकृष्ण भगवान् नित्यकृत्यसे निवृत होकर एक सुंदर आसनपर विराजमान हैं, भीमसेनने जातेही भगवान्को प्रणाम करके धर्मराजका वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी प्रार्थना की कि, आप कृपा करके अब धर्मराजको कुछ ऐसा समझादीजिये कि आगेके लिये यह कुटेंव छूटजाय, क्योंकि, वे आपहीका कहना मानेंगे ।

सुनकर भगवान्ने कहा—भीमसेन ! मैं इस बातमें नहीं पडता और न मैं धर्मराजको इस विषयमें कुछ कहनाही चाहता हूं, क्योंकि प्रेम ऐसाही पदार्थ है कि, जिसमें किसी प्रकार का नियम नहीं रह सकता है, तुमको भी किसी समय ऐसाही करना पडेगा अर्थात् द्रौपदीके पांव दावनेही पड़ेंगे यह सुनकर भीमसेनने कहा कि, प्रभु ! यदि स्त्री बहुत रूपवती हो तो क्या पुरुषको उसके वस्त्र धोना अथवा पाँव दाबना चाहिये ? ऐसी स्त्री किस कामकी ? जो वस्तु अपने सुखके निमित्त ग्रहण की गई है और यदि उससे कुछ दूषण लगता है तो वह वस्तु किस कामकी है ? फिर महाराज ! बहुत सुन्दर भोजन जो देखनेमें और स्वादमें अमृत के तुल्य है किन्तु, परिणाम उसका धर्म तथा शरीरको हानि पहुंचानेवाला हो तो वह भोजन किस कामका है ? सुज्ञ पुरुष तो ऐसा भोजन कदापि नहीं ग्रहण कर सकते हैं, तैसेही स्त्री जो पुरुषकी सेवाहीके लिये बनाई गई है वह उलटी पुरुषसेही सेवा करावे ऐसी स्त्री किस कामकी है ? इत्यादि भीमसेनने भगवान्से बहुत कुछ कह सुना कर प्रार्थना की, आप धर्मराजको कुछ समझा दीजिये किन्तु भगवान्ने तो यही उत्तर दिया कि —

हे भीम ! इस बातके छेडनेमें कुछ सार नहीं है मैं इस विषयमें धर्मराजको न कुछ कह सकता हूं न समझा सकता हूं। क्योंकि धर्मराज जो कुछ करता है उचितही करता है तुमको भी वैसा ही करना चाहिये। भगवान्का फिरभी वही उत्तर सुनकर भीमसेनको कुछ समाधान न हुआ। वहांसे लौट तो आया किन्तु उस दिनसे उसके हृदयमें इस बातका एक खटकासा बैठगया था जब उसे वह बात याद आ जाती थी तब उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो जाता था और ऐसाही होते २ उसका खानापीनादि छूटगया। इस प्रकारकी चिन्ता ही चिन्तामें कुछ दिनोंके पश्चात् उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल होगया। भीमकी यह दशा देखकर एक दिन कुंती माताने पूछा कि, हे बेटा भीम ! तेरे शरीरकी यह क्या दशा है ? क्या तेरे खानेपीनेका प्रबन्ध यथार्थ नहीं है ? क्या तुमको किसीका भय लगने लगा ? पर यह तो कभी हो नहीं सकता क्योंकि, तू महान् बलवान् है फिर बता तो सही कि तेरा शरीर इस प्रकारसे क्यों दुर्बल होगया है ? यह सुनकर भीमसेनने कहा—माता ! मुझे एक प्रकारका रोग है जिससे मेरी यह दुर्दशा हो गई है। इस रोगकी दवा भगवान् श्रीकृष्णजीके पास है, किन्तु वे मुझे नहीं देते हैं ! तुम जाके उनसे कुछ कह दो तो अच्छा है। सुनतेही कुंती भगवान्के पास गई और कहने लगी भगवन्। आप भीमको औषधि क्यों नहीं देते ? भगवान्ने कहा भुवाजी ! इस जरासी बातके लिये आपने इतना कष्ट क्यों उठाया ? पधारिये आजही शनिवारी अमावस्या है, मैं भीमको औषधि दूंगा, उसे रात्रिको मेरे पास भेज देना।

कुंतीने आकर भीमसे कहा कि आज तू रात्रिको कृष्णके पास जाना। माताके कथनानुसार रात्रिको भीमसेन कृष्णजीके पास गया। जातेही भगवान् कृष्णचन्द्रजीने भीमसेन पूछा कि, जहां मैं कहूंगा वहां तुम जावोगे भीमसेनने उत्तर दिया हां ! आप जो कुछ आज्ञा करें वह मैं करनेको तैयार हूं। भगवान्ने कहा —उत्तर दिशाकी ओर जावो, वहां नगरके बाहर कुछ दूर पर एकपीपलकावृक्षदिखाई देगा, जाकर उसपर चढ़ जाना और कहीं छिप कर उसपर बैठे हुए वहां जो कुछ हो उसका तमाशादेखा करना। किन्तु यह ध्यान रखना

कि वहां जो कुछ भय हो उसे डरना नहीं। भगवान्‌की आज्ञानुसार भीमसेन अस्त्र धारण करके उत्तर दिशाकी तरफ रवाना हुआ। मार्गमें अनेक व्याघ्र सिंह इत्यादि भयानक पशु तथा भूत, वेताल, डंकिनी शंखिनी दैत्य, निशाचर नाना प्रकारके डरावने शब्द कर रहे थे। रात्रि अंधेरी थी और गंगाजीका प्रवाह खलखलाहट करता हुआ बह रहा था। ऐसे भयानक स्थानमें एक भीमसेनके अतिरिक्त और किस माईके लालमें यह शक्ति थी कि वहां जा सकता किन्तु, यह तो भीमसेन था किसीकी कुछ परवाह न करके, उस पीपलके वृक्षपर चढ़ गया और वहीं सघन पत्तोंकी ओटमें किसी एक मजबूत डाली पर जा बैठा लगभग डेढ़ पहर के अन्दाज रात्रि व्यतीत हुई होगी कि इतनेहीमें भीमसेनको एकसे एक बढ़कर अद्‌भुत चमत्कार दिखाई देने लगे।

सबसे प्रथम तो जगमगाता हुआ कुछ ऐसा पदार्थ दिखाई दिया कि, जिसके दिव्य प्रकाशसे दशोंदिशा प्रकाशित होगई। इतनेहीमें एक परम कांतिवान् महान् बलवान् पुरुष आकर उस प्रकाशित मैदानको साफ करने लगा। वह भीमसेनका पिता वायु था मैदान साफ होनेकी देरी थी कि, इतनेहीमें शिल्पविद्याके सागर भगवान् विश्वकर्माने आकर देखतेही देखते, अनेक प्रकारके मणि और रत्नोंसे जडित स्तंभवाला परम विशाल मनोहर एक मंडप बनाकर खडा कर दिया। उसके बीचमें एक बहुत बडा सिंहासन ऐसा बिछाया गया कि जिसकी जगमगाहटसे नेत्रोंको चकाचौंध होन लगी। उस सिंहानके आसपास और भी कई एक बडे छोटे नाना प्रकारके सुन्दर आसन बिछाये गये। इन सब आसनोंकी व्यवस्था होनेके पश्चात् रवि, सोमादि नव ग्रह हाथोंमें दण्ड धारण किये मण्डपकेदरवाजोंपर द्वारपाल बनकर आखडे हुये, जिसके अनन्तर नारदजी आये, नारदजी आतेही एकादश रुद्र, दश दिक्पाल, तथा तेंतीस कोटि देवता सब आ उपस्थित हुए। उन सबोंको नारदजीने यथायोग्य आसनोंपर बैठा दिया। इतनेहीमें छप्पन कोटि यादवोंको लिये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी वहां आ पहुंचे। उनके साथ पांचों पंडे भी थे। उनमें अपने समान एक दूसरे भीमको देखकर उस पीपल पर चढ़े हुए भीमको बडाही आश्चर्य हुआ। मनमें कहने लगा ये पांचों पंडे कौन हैं। इतनेही में अपने गणोंको साथ लिये हुए शंकर भी आगये उनके अन्यान्य गणोंको बाहर छोडकर मुख्य गणों सहित महादेवजीको नारजीने मण्डपमें ले जाकर बैठाया। इसके अनन्तर विष्णु और ब्रह्माजी आये। नारदजीने सिंहासनके दाहिनी ओरके आसनपर विष्णुको, और बायें ओरके आसनपर ब्रह्माको ले जाकर बैठाया। इसी प्रकारसे त्रैलोक्यके समस्त देवता वहां आगये और सारा मण्डपभरगया किन्तु अब तक भी वह मुख्य सिंहासन खाली ही पड़ा है, यह देखकर भीमसेन मनमें विचार करने लगा कि, औरोंकी तो बात क्या है? साक्षात् ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तक आकर इस सिंहासनके नीचे बैठे है, अब इनसे श्रेष्ठ इस देवसभाका अधिपति और कौन होगा? जो इसपर आकर बैठेगा? भीमसेन अपने मनमें यह विचार करही रहा था कि, इतनेमें एक भव्य वस्त्रालंकार धारण किये हुए परम सुन्दर स्वरूपवाली स्त्री दूरसे आते देख पड़ी। केश उसके खुले हुए ठेठ पावोंकी एडियों तक लटक रहे थे, ललाट पर कुम्कुमकी एक दिव्य बिन्दी लगी हुई, हाथमें एक त्रिशूल और पाश धारण किये मण्डपके निकट आ पहुँची। आतेही उसके अंगकी आभाके सन्मुख समस्त सभाके देव-

गणोंकी प्रभा क्षीण होगई और ज्योंही उसने मण्डपके द्वारमें पांवदिया त्योंही एक साथ समस्त देवगण खडे होकर–"जय महामायाकी ! जय आदिशक्तिकी !" इत्यादि जय जयकारकी ध्वनिसे मण्डपको गुंजादिया, और वह महादेवी छम २ करती हुई उस परम दिव्य सिंहासन पर आकर विराजमान हो गई। तिसके पश्चात् समस्त देवगण उसकी आज्ञा लेकर अपने २ आसन पर जा बैठे। भीमसेनके नेत्रोंको उस महामायाके दिव्य तेजके सन्मुख चकाचौंध आगयी थी इस कारणसे भीमसेनकी दृष्टि एकाएकी उसके मुखारविन्दपर नहीं ठहर सकती थी। किन्तु जब थोडी देरतक ध्यानपूर्वक दृष्टि जमाकर भीमने देखा तो ज्ञात हुआ कि यह तो देवी द्रौपदी है ! क्या इसका ऐसा प्रभाव है ? कि जिसको ब्रह्मा विष्णु आदिक भी नमन करते हैं ? अहो ! यह द्रौपदी क्या ? यह तो साक्षात् आदिमाया है। अच्छा अब देखना चाहिये आगे क्या होता है।

इतनेमेंही उस महादेवीने ब्रह्माको बुलाया तत्काल ब्रह्मा हाथ जोडकर सन्मुख आ खडे हुए और विनयपूर्वक पूछने लगे माता ! क्या आज्ञा है ? उसने कहा हे ब्रह्मदेव ! तुम्हारा सृष्टिकर्म यथावत् चलाजाता है कि नहीं ? ब्रह्माने उत्तर दिया, हां माता ! आपकी आज्ञानुसार बराबर चलाजाता है। यह सुनकर ब्रह्मासे कहा कि, जावो अपने स्थानपर बैठ जावो। फिर विष्णुको बुलाया उनसे पूछा कि–हे चक्रपाणि सृष्टिका यथार्थ पालन तुम पोषण करते हो कि नहीं ! विष्णु ने भी कहा कि हे माता ! मैं आपकी आज्ञानुसार सृष्टिका पालन पोषण बराबर किये जाता हूँ। उनको बैठनेकी आज्ञा देकर फिर शंकरको बुलाके पूछा कि हे शूलपाणि ! तुम्हारा सृष्टिसंहार नियमपूर्वक चला जाता है कि नहीं ? महादेवने भी विनयपूर्वक उत्तर दिया कि हां, माता ! आपकी आज्ञानुसार बराबर चला जाता है। इत्यादि प्रश्नोत्तर होनेके पश्चात् इन्द्रादि देवता तथा दिक्पालादिकोंके नियमित कामोंकी पूछताछ हो चुकी। तब सबमें पीछे यमराजने आकर नमस्कार किया और छः घडे रुधिरसे भरे हुए और एक खाली घडा ऐसे सात घडे सन्मुख रखकर हाथ जोड कर कहने लगाकि, हे जगदम्बे ! ये छः घडे तो सृष्टिकी आदिसे आजतक महिषासुर आदिक अनेक दैत्य और दानवोंके रक्तसे भरगये हैं किन्तु यह एक सातवां घडा खाली है जो अब कौरव और पांडवोंके युद्धमें भरा जायगा। यह सुनकर द्रौपदीने पूछा कि इन दोनों पक्षकी सेनामें ऐसा प्रतापी योधा कौन है कि, जिसके रक्तसे यह घडा भरा जायगा ? तब यमराजने कहा हे जननी ! भीम अपने बल का बडा अभिमान करता है, अतएव यह सातवां घडा उसीके रुधिर से भरा जायगा। यदि वह यहां आजाय तो इसी क्षण इस सातवें घडेको भी उसके रुधिरसे भरदूं। इतनेहीमें नारदजी बोल उठे, हे यमराज ! वह भीम तो उस पीपलके वृक्ष पर छिपा बैठा है फिर आप अपने दूतोंको भेजकर उसे क्यों नहीं पकडवा मंगाते ? इस बातको सुनते ही भीमके होश उड़गये थरथर कांपने लगा, जान लिया कि हाय ! आज तो मृत्यु आगई किन्तु, फिर कुछ धैर्य बांधकर मनमें विचार करने लगा कि, वे यमराजके दूत तो मुझे पकड ले जावेंगेही और मैं वहां मारा ही जाऊंगा इससे तो यही अच्छी बात है कि, मैं स्वयं अपने आपही जाकर द्रौपदी देवीके चरणकमलोंमें जा गिरूं। क्योंकि, वह मेरी स्त्री नहीं किन्तु देवी है। साक्षात् महामाया आदिशक्ति है, तो फिर मुझे उसकी एक चरणसेवाही क्या किन्तु जो कुछ वह

आज्ञा करे वह सब पालन करनेको मैं तैयार हूं। यह दृढ़ निश्चय करके द्रौपदीदेवीके चरणारविन्दोंमें जा गिरनेको भीमसेन ज्योंही एकाएक पीपलके वृक्षके से पृथ्वीपर धम्म से कूद पड़ा त्योंही देखता है कि, न तो वहां कहीं सभा है न कहीं देवी द्रौपदी है, सारी माया जहां की तहां अदृश्य होगई।

यह कौतुक देख भीमसेन बहुतही घबराया सारे शरीरसे प्रस्वेदकी धारा बह निकली, हृदय धड़क धड़क करने लगा कुछ देरमें धैर्य बांध कर मनको स्थिर किया और ज्यों अपना जी बचाकर वहांसे भाग आया। आतेही भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर अपनी सारी रामकहानी कह सुनाई। सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा हे वृकोदर! मेरा वास्तव स्वरूप तो क्षर (दृश्यमान मायाकृत प्रपञ्च) अक्षर (इस प्रपञ्चका कारण आदिमाया) इन दोनोंसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम परमात्मा है और जिसको तुमने देखाहै वह महामाया द्रौपदी जिसका दूसरा नाम कृष्णा है, जिसके आश्रित करनेसे मैं श्रीकृष्णकेनामसे जगतमें प्रगट हुआ। अतएव हे भीम तू उसको अपनी स्त्री न जान वह मेरी माया है, जिसकी महिमा मैंने तुझको दिखायी है उसकी सेवा मुझे करना ही चाहिये। इत्यादि बहुत समझा बुझाकर भगवान्ने भीमसेनके मनसे भय और अभिमानको निवारण किया। तब बार २ प्रेमपूर्वक भीमसेन भगवान्को नमस्कार कर अपने घर गया। इस कारण कबीर साहेबने एक भजन कहा है :—

ऐसी प्रबल यह चपल नारी, सब जग वश कीन्हों रे ।।टेक।।
ब्रह्मचारी योगी संन्यासी, ऋषी मुनि तपसी वनवासी।
दण्डी मुण्डी सिद्ध उदासी, काहू बचन न दीन्हों रे ।।नारि०।।
गण गन्धर्व असुर सुर किन्नर, दैत्य पिशाच प्रेत विद्याधर।
इनकी क्या पर विधि हरि शंकर, छलि लिये तीनों रे ।।नारि०।।
अब औरकी कौन चलाई, जो बैठे हैं स्वांग बनाई।
त्याग दिखाके करें ठगाई, धिक् यह जीनों रे ।।नारि०।।
बचा चाहो तो मनको बांधो, सत्यनाम उरमें आराधो।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, गुरुपद चीन्हों रे ।।नारि०।।

इसका अर्थ स्पष्ट है तो भी लिखता हूं —

ऐसी प्रबल यह नारी, जग वश कीन्हों रे ।।

सद्गुरु कहते हैं कि, यह माया इस प्रकारकी महती बलवती और अपना शीघ्र काम बना लेनेवाली स्त्री है कि, इसने केवल एक दोको ही नहीं वरन् समस्त संसारको अपने वशीभूत कर लिया है।

ब्रह्मचारी योगी संन्यासी, ऋषी मुनि तपसी वनवासी
दण्डी मुण्डी सिद्ध उदासी, काहू बचन न दीन्हों रे ।। नारि०।।

क्या ब्रह्मचारी, क्या योगी, क्या संन्यासी, क्या ऋषि, मुनि, क्या तपस्वी, क्या बनमें वास करनेवाले, क्या दण्डधारी, क्या मुण्ड मुंडाये हुए क्या सिद्ध, क्या उदासीन, इस मायाने किसीको बचने नहीं दिया। सबको अपने जालमें फँसा लिया है और वह कैसे फँसाया करती है, इस पर हम एक कथा सुनाते हैं —

एक समय नारद मुनि वैकुण्ठमें जाकर मायापति भगवान्‌से कहने लगे कि महाराज! अब मैंने आपकी मायाको जीत लिया। भगवान्‌ने मुस्कराकर उत्तर दिया कि आप महान् ज्ञानवान् हैं यदि आपने मायाको जीत लिया तो क्या बडी बात है? यह सुनकर नारद मुनि मारे अभिमानके फूले न समाये, थोडी देरके पश्चात् भगवान्‌ने नारदजीसे कहा कि आज हम कान्यकुब्ज देशके राजासे मिलने जाते हैं, यदि आपकी भी इच्छा हो तो चलिये। गरुडपर सवार हो लीजिये। यह सुनकर नारदजीभी भगवान्‌के साथ हो लिये। कान्यकुब्ज देशकी सीमापर पहुंचते ही वनमें एक सुन्दर सरोवर निर्मल जलसे भरा हुआ देख पडा। नारदजीने भगवान्‌से कहा कि, महाराज! यह सरोवर तो बहुतही उत्तम है। भगवान्‌ने कहा कि यदि आपकी इच्छा हो तो झटपट स्नान पूजन कर लीजिये। नारदजी स्नान करनेको जलमें घुसकर ज्योंही डुबकी लगाते हैं कि, भगवान् तो गरुडपर सवार होकर पीछे वैकुण्ठको लौट आये और नारदजी उछले तो स्त्री बन गये, तथा स्त्री बनकर मनमें विचारने लगे जैसी मैं सुन्दर युवा स्त्री हूं वैसाही मेरे योग्य कोई पति भी मिलना चाहिये। इतनेमें ही उस नगर का राजा शिकार खेलता हुआ वहां आ पहुँचा और स्त्रीपर मोहित होकर पूछने लगा कि, तुम किसकी कन्या हो और वनमें क्या करने आई हो? स्त्री बोली—मैं कुछ नहीं कह सकती आपको जो कुछ उचित जान पडे सो कीजिये! राजा उस सुन्दरीको घोडेपर बैठाकर अपने राजमहलमें लाये और पटरानी बनाकर बडे प्रेमसे उसके साथ रहने लगे। समय पाकर उस रानीके बारह पुत्र बारह कन्या उत्पन्न हुईं फिर उनके विवाह होकर बारह बहुएं और बारह जँमाई घर आये और थोडे ही दिनोंमें नाती पोतोंकी टकसार खुलगई। देखकर रानीको अब तो बडाही अहंकार-हुआ कि मेरे बराबर संसारमें अब दूसरा कौन होसकता है? इस प्रकारसे नारीरूप नारदके जब साठ वर्ष बीत गये, तब कहीसे एक दूसरे देशका राजा उस राज्यपर चढ़ाई करके युद्ध करने लगा उस युद्धमें रानीके बारहों पुत्र मारे गये, रातको जब लड़ाई बन्द हुई रानी अपने पतिको लेकर पुत्रोंके छिन्न भिन्न मृतक शरीर उठालाई और महान् दुःखी हो रोकर विलाप करने लगी कि, मुझसी अभागिनी दुखिया संसारमें अब होगी कौन? गर्व प्रहारी भगवान्‌को नारदकी यह दीन दशा देखकर दया आई और ब्राह्मणका रूप धारण कर वहां आ प्रगट हुए और समझाबुझाकर रानीसे कहने लगे कि भूला! अब इस रोने पीटनेसे क्या होगा? तुम्हारे पुत्र प्यासे मारेगये हैं इससे जल्दी स्नान करके उनको तिलांजली दो, जिसमें उनकी प्यास बुझे, मंत्र हम बुढ़े देते हैं। सुनकर रानी झटपट उठी और उसी तालाबमें स्नानको धसी ज्योंही गोता लगाकर ऊपर निकलती है त्योंही अपनेकों जटा लटकाये मूछ दाढ़ी बढ़ाये नारदके रूपमें पाया, तब तो भौंचक्की हो इधर उधर देखने लगी। सामने ही भगवान् देख पडे। भगवान् कहने लगे नारदजी देखते क्या हो? जल्दी लंगोटी पहनकर तूंबा उठावो मेरे साथ चलो राजासे मिलने जानाहै बडी देरहुई। नारदजी दौडकर भगवान्‌के चरणोंपर गिरकर कहने लगे

कि धन्य है आपकी मायाको ! अब मैं आपकी शरण हूँ । भगवान् मुसकरा कर बोले चलिये, जल्दी राजासे मिलना है । नारजीने कहा बस, अब कृपा करके रहने दीजिये जिस राजाके पास मैं साठ वर्ष रानी बनके रहा अब फिर उसके पास मुझे न ले चलिये । इसी प्रकार मायाने—

गण गंधर्व असुर सुर किन्नर, दैत्य पिशाच प्रेत विद्या-
धर । इनको क्या पर विधि हरि शंकर, छलि लिये
तीनों रे ।। नारि० ।।

शिवके गण, गान करनेवाले, देवता, राक्षस, अन्य प्रकारके देवता, किन्नर (कुबेरके अनुयायी देवता) दैत्य, पिशाच, प्रेत, विद्याधर इत्यादिकों को तो बातही क्या है किन्तु, साक्षात् ईश्वररूप ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तीनोंको भी इस मायाने छल लिया है ।

अब औरोंकी कौन चलाई, जो बैठे हैं स्वांग बनाई ।
त्याग दिखाके करे ठगाई, धिक् यह जीनों रे ।।नारि०।।

भला जब इस मायाने ऐसे २ महापुरुषोंको छल लिया है तो फिर उनकी तो बातही क्या है कि, जो झूठ मूठका स्वांग बनाये हुए त्याग दिखाकर जगतमें ठगाई कर रहे हैं, उनका तो जीवनही धिक्कार है ।

बचा चहो तो मनको बांधो, सत्यनाम उरमें आराधो ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, गुरुपद चीन्हों रे ।।नारि०।।

अतएव सद्गुरु कबीरसाहब कहते हैं कि, हे भाई साधो ? जो तुम इस मायासे वचना चाहो तो इस मनको संसारके विषयोंमें जानेसे रोक दो । और त्रिकालबाध्य जो सत्यनाम है उसको हृदयमें धारण करके मनको गुरुके चरणकमलोंमें लगा दे तो फिर माया तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती है ।

भ्रम[1] छोडाय पथ विकटको, निकट लखायो राम ।
तासे गुरुको कीजिये, बार बार परणाम ।।

शास्त्रोंमें कहा है कि, परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग बहुत कठिन है ऐसे कठिन मार्गको दूर करके निकट ही अर्थात् अत्यन्त समीप ही अपने हृदयमें ही रमण करनेवाले राम[2]को लखा दिया इसलिये गुरुको बारम्बार प्रणाम करना चाहिये ?

---

१ कठोपनिषद्की तीसरी वल्लीके मन्त्र १४ में यमराजने नचिकेतासे कहा है कि— "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति" पदार्थ (क्षुरस्य) छुरेकी (निशिता) तीखी (दुरत्यया) धारपर चलना जैसा दुस्तर है तैसे ही (तत्) उस परमात्माकी प्राप्ति करनेके (पथः) मार्गको (कवयः) विद्वान् पुरुष (दुर्गम) कठिनतासे गमन करने योग्य (वदन्ति) कहते हैं ।

२ वसिष्ठजीने कहा है "गुरोः कृपाप्रसादेन आत्मारामो हि लभ्यते" अर्थात् जब गुरु प्रसन्न होकर कृपा करते हैं तभी अपनेमें रमण करनेवाला परमात्मा निश्चय प्राप्त होता है ।

फल प्रत्यक्षपद मोक्षपद, कल्पवृक्ष गुरुदेव।
तिन्हैं त्यागिते करत नर, आक ढाककी सेव ।।

अर्थ प्रत्यक्ष फल आधिव्याधि जनम मरणादि दुखोंसे छुडाकर जो मोक्षपद प्रदान करानेवाले कल्पवृक्ष[1] (जो कुछ मनमें कल्पना उठे तिसको प्राप्त करानेवाला वृक्ष) के समान गुरुदेव को त्याग करके मनुष्य आक-ढाकके समान अन्य, देवी देवताकी सेवा करता फिरता है।

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, गण गंधर्व मुनि देव।
ताके जो दरशन चहे, करु सतगुरुकी सेव ।।

जिसको ढूँढ़ते २ ब्रह्मादि गण, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, देवता सब थक गये हैं, उसका दरशन करना चाहो तो सद्गुरुकी सेवा करो।

अगम[2] अगोचर अज अलख, नेति कहत जेहि वेद।
होय न सके वह प्राप्त बिन, पाये गुरुमुख भेद ।।

अगम (जिसको बुद्धि नहीं जान सकती) अगोचर (जिसका ज्ञान श्रोत्र चक्षु आदि किसी इन्द्रियसे नहीं प्राप्त हो सकता है) अज (जो कभी उत्पन्न नहीं हुआ) अलख (तर्कनासे रहित) तथा जिसका वेद नेति २ (अर्थात् ऐसा नहीं २) कहते हैं बिना वह गुरुके मुखारबिन्दसे ज्ञान पाये कदापि नहीं प्राप्त हो सकता।

चिदानन्दघन विश्वमें, व्यापि रह्यो सब ठौर।
सो गुरु मूरति रूप धरि प्रगट भयो नहिं और ।।

चैतन्य आनन्द घन परमात्मा जो सामान्य रूपसे सम्पूर्ण विश्वमें परिपूर्ण है वही गुरुमूर्ति रूप धारण करके प्रगट हुआ है, उस गुरुसे भिन्न परमात्मा पदार्थ नहीं है।

---

१ गुरुगीतामें कहा है कि "काम्यानां कामधेनुर्वे, कल्पिते कल्पपादपः। चिन्तामणिश्चिन्तितस्य, सर्वमंगलकारकम् ।। ज्ञानपदं परिवृत्य, प्रत्यक्ष गुरुमीश्वरम्। योऽन्यमर्चयते देवं परबुद्धया स पापभाक्" अर्थ :– कामना पूर्ण करनेकी कामधेनु, कल्पनापूर्णकरनेको कल्पवृक्ष, मनवांछित पदार्थ प्राप्त करनेको चिन्तामणि ऐसे समस्त कल्याण करनेवाले तथा ज्ञान प्राप्त करानेवाला प्रत्यक्ष परमात्मास्वरूप जो गुरुदेव हैं तिनको छोड़कर कोई दूसरेके कहनेसे अन्य देवकी पूजा उपासना करता है वह पापका भागी है। योगवासिष्ठ निर्वाण-प्रकरणमें भी कहा है कि इयतादि परिच्छिन्नं रुद्रादेः प्राप्यते फलम्? अकृत्रिममनाद्यन्तं, फलं मानन्दमात्मनः। अकृत्रिमं फलं त्यक्त्वा यः कृमिफलं व्रजेत्। त्यक्त्वा स मन्दारवनं कारञ्जं याति काननम् ।। अर्थ-इयतावान् परिच्छिन्नत्र रुदादि मूर्तिके पूजनसे परिश्रिच्छिन्न ही फल प्राप्त होता है और अकृत्रिम अनादि अनन्त आत्माकी पूजासे अनन्त आनन्दरूपी फल प्राप्त होता है, इससे जो पुरुष अकृत्रिम फलको त्यागकर कृत्रिम फलकी ओर जाता है वह मानो कल्पवृक्षके वनको त्यागकर कांटोंके वनको जाता है।

२ गुरुगीतामें कहा है–"गुरुदेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः" अर्थात् गुरुही परब्रह्म परमात्मा है इसकारण गुरुको नमस्कार है।

जैसे भृङ्गी कीटको, पलटि भृङ्ग करि देत।
तैसे सतगुरु शिष्यको, निज समान करि लेत।।

जिस प्रकार भृंगी (एक जातिकी भँवरी) मकडी इत्यादि किसी कीडेको पकडकर अपने घर ले जाती है और उसके हाथ पांव काट कर उसके चारों तरफ उडडी हुई अपना शब्द सुनाया करती है, जिसको सुनकर उस कीडेका ध्यान निरन्तर उस भृंगीहीमें लगा रहता है जिसके प्रभावसे वह कीडा तद्रूप होकर थोडे दिनोंमें भृगीही बन जाता है। तैसेही सद्गुरु भी शिष्यको अपना उपदेश सुनाकर अपने समान बना लेते हैं।

गढि प्रतिमा निज हाथसे, करें तासुके सेव।
देह देहरा माँहि तजि, सतगुरु चेतन देव।।

लोग अपने हाथसे जो मूर्ति गढ़कर बनाते हैं, उसकी तो पूजा करते हैं किन्तु शरीर-रूपी मन्दिरमें जो सद्गुरु चेतनदेव हैं, उनकी पूजा नहींकरते हैं।

विष्णु शंकर आदिको, जड़ प्रतिमा जग माँहि।
गढि गढि पूजे बावरे, चेतन गुरुको नाँहि।।

विष्णु, शंकर इत्यादि और भी अनेक भैरवी महाबीर, देवी, देवताओंकी मूर्तियां काष्ठ पाषाणादिक जड पदार्थोंकी तो लोग बना-बना करपूजतेहैंकिन्तु, गुरुकी चेतन मूर्तिको नहीं पूजते।

जड़ मूरति पूजत फिरे, धारण करि परतीत।
सतगुरु चेतन देवको, त्यागि करे अनरीत।।

जड मूर्तियोंपर तो लोग कुछ झूठी सच्ची श्रद्धा धारण करके दूर दूर देशान्तरमें भी जाकर पूजते फिरते हैं, किन्तु सद्गुरु चेतन देवको नहीं पूजते यह बडी अनरीत करते हैं। इसपर कबीर साहिबने एक पद भी कहा है :—

सन्तो जगको को समझावे।
तजि प्रत्यक्ष सतगुरु[1] परमेश्वर जड़ पूजनको
जावै।। टे०।। जड पूजाके फल अदृष्ट हैं. कालान्त-
रसे पावे। दृष्ट अदृष्ट उभय फलदायक, सो पूजा नाँहि

---

१ योगवासिष्ठ निर्वाणप्रकरणमें कहा है कि—"न देवः पुण्डरीकाक्षो, न च देवस्त्रिलोचनः न। देवःकमलोद्भूतो, न देवस्त्रिदिशेश्वरः।।" अर्थात् न विष्णु देवता है, न महादेव देवता है, न ब्रह्मा देवता है, न देवराज इन्द्र देवता है। किन्तु "अकृत्रिममनाद्यंतं देवनं देव उच्यते।" अर्थात् जिसको किसीने बनाया नहीं है तथा जो अनादि अनन्त शुद्धचेतन है उसीको ज्ञानी लोग देवता कहते हैं।

भावे ।। ले पषाण मूरति करसे गढि; बहुविधि रूप बनावे। विष्णु शंकर सूर्य गणपति, जो कुछ मनमें आवे ।। दधि घृत पय मधु लै प्रमाणयुत, तामें खाँड मिलावे। यहि विधिसे करि पञ्चामृत, तेहि मूरतिपर ढरकावे ।। पुनि लै विमल वारि सुरसरिको, शुद्ध स्नान करावे। धोय पौछि चन्दन लगाय करि, पट भूषण पहिरावे ।। करे प्रतिष्ठा वेद मन्त्रसे, तामें प्राण बुलावे। जो वे मन्त्र सत्य करि जाने, निज पितु क्यों न जिवावे। भोग थार धरि ताके सम्मुख घण्टानाद बजावे। भोजन कौन करे बिनचेतन, उलटि आपही खावे ।। यहि विधि करत करत जड़पूजा, आपहु जड बनजावे। कहे कबीर ज्ञान सतगुरुका, कैसे हृदय समावे ।।

इसका अर्थ स्पष्ट है किन्तु सहज समझनेके लिये लिख भी देता हूँ —

सन्तो जगको को समझावे ?

तजि प्रत्यक्ष सतगुरु परमेश्वर, जड पूजनको जावे ।। टे० ।।

सद्‌गुरु कहते हैं कि, हे संतो ! इस जगत्‌के मनुष्योंको कौन समझावे ? कि, जो प्रत्यक्ष परमात्मा चैतन्य सद्‌गुरुको त्याग कर जड मूर्तियोंकी पूजा करने जाते हैं।

इस कथनसे किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि कबीर साहिब मूर्ति पूजाके सर्वथा विरोधी हैं, किन्तु नहीं ? आपने आगे कहा है कि :—

जड पूजाके फल अदृष्ट हैं, कालान्तरसे पावे।

दृष्ट अदृष्ट उभय फलदायक, सो पूजा नहिं भावे।

शास्त्रोंमें जड मूर्तिके पूजनका फल अदृष्ट माना है कि जो फल कालान्तरसे किसी समय मिलता है, किन्तु गुरुकी पूजाका फल दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारके फलका देनेवाला है इस कारणसे तत्काल उसका फल मिलकर फिर कालान्तरमें भी बहुत कुछ फल मिलता है सो वह पूजा किसीको अच्छी नहीं लगती है।

ले पषाण मूरत करसे गढि, नाना रूप बनावे।

विष्णु शंकर सूर्य गणपति, जो कुछ मनमें आवे ।।

सिलावट पत्थरको लेकर, प्रथम मनमें यह कल्पना करता है कि किसी की मूर्ति बनाऊं ? तिसके अनन्तर विष्णु शंकर, सूर्यादिदेवताओंमेंसे जिस किसी देवता की मूर्ति बनानेका निश्चय मनमें कर लेता है उसी देवताकी मूर्तिको खोदकर उस पाषाण में बनादेता है, इसी प्रकार से जिस जिसकी मूर्ति वह बनाना चाहता है बना देता है ।

दधि घृत पय मधु लै प्रमाणयुत, तामें खांड मिलावे ।
यहि विधिसे करि पञ्चामृत, तेहि मूरति पर ढरकावे ।।

दही, घृत, दूध और शहरको प्रमाणसहित लेकर उसमें शक्कर मिलाते हैं इस प्रकार से पञ्चामृत बनाकर फिर उस मूर्तिपर अभिषेक करते हैं ।

पुनि लै विमल वारि सुरसरिको, शुद्ध स्नान करावे ।
धोय पोछि चन्दन लगाय करि, पट भूषण पहिरावे ।।

जिसके अनन्तर निर्मल गंगाजलसे शुद्ध स्नान कराके कपडेसे पोछता है, फिर चन्दन लगाकर वस्त्र आभूषण पुष्पोंकी माला आदि धारण कराता है ।

करे प्रतिष्ठा वेदमंत्रसे, तामें प्राण बुलावे । जो वह मंत्र
सत्यकरि जाने, निज पितु क्यों न जिवावे ।।

फिर उस मूर्तिकी वेदके मंत्रोंसे प्रतिष्ठा करके प्राण-प्रतिष्ठा करता है किन्तु, आप अपने हृदयमें निश्चय पूर्वक यह बात नहीं जानता है कि मैं जो यह वेदमंत्र उच्चारण करता हूँ इससे अवश्यमेव इस मूर्तिमें प्राण आ जायेंगे, क्योंकि जो कदाचित उस मंत्रके प्रभावको मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनेवाला सत्य जानता तो, अपने मृतक पिताको स्मशान ले जाकर कदापि दग्ध न करके उसी मंत्रसे पुनः उसे जीवित कर लेता ।

भोग थार धरि ताके सन्मुख, घंटानाद बजावे ।
भोजन कौन करे विन चेतन, उलटि आपहीं खावे ।।

फिर उस मूर्तिके सम्मुख अनेक प्रकारके पक्वान्न व्यंजनोंसे थाल भरकर रखते हैं और शंख घरियाल बजाके भोग लगाते हैं, किन्तु, बिना चेतनके वह जड मूर्ति कैसे भोजन कर सकती है ? उसमें भोजन करनेवालाही कौन है ? यह बात जानकर मूर्तिके सन्मुखसे थाल उठा लेते हैं और आप चट्ट कर जाते हैं । अब इससे बुद्धिमान् पुरुष जान सकते हैं कि, भोग लगाने वाले अपने मनमें अच्छी तरह यह जानते थे कि, मूर्ति जड है, यह भोजन नहीं करेगी तब वह थाल लेकर आप भोजन कर गये । यदि उनके हृदयमें सत्य श्रद्धा होती कि, यह मूर्ति अवश्य भोजन करेगी तो क्या ताकत थी उस जड मूर्तिकी ? कि इस चेतन मूर्तिकी आज्ञाको भंग करके सन्मुख धरे हुए व्यंजनोंका भोजन न कर लेती ? इस विषयमें हम तुमको एक कथा सुनाते हैं, क्या आश्चर्य है कि, तुम भी समझ जावो कि, यद चैतन्य मूर्ति क्या नहीं करती है ?

नामदेवजी एक छीपी[1] (जो छीट छापते हैं) के बालक थे। इनके माता पिता तो जन्मते ही मरगये थे पर इनका पोषण इनके नाना नानी किया करते थे। नाना ठाकुरजीके बडे भक्त थे, वे नित्य प्रभातमें ही उठते और स्नान करके ठाकुरजीकी पूजा किया करते और नामदेवजी उस समय सोये रहा करते थे किन्तु एक दिन जब नाना पूजा कर रहे थे उस समय इनकी भी आंख खुल गयी और आंख खुलते ही जैसे बालकोंका नियम होता है कि, रोने लगते हैं; तैसेही ये भी आंख मल २ कर रोने लगे। नानीने कहा बेटा ! रोवो मत, नाना पूजा करते हैं, क्रोधित होंगे। नामदेवके हृदयमें कुछ भक्तिके संस्कार थे, सुनतेही चुप होगये और एक कोने में खडे होकर नानाकी पूजा देखने लगे, किन्तु, नाना एकान्तमें पूजा करते थे इस कारण पूजाकी यथा-वत् समस्त विधि तो नामदेवजी की दृष्टिमें नहीं आई किन्तु कुछ २ बातें देखनेहीसे इनके भी मनमें पूजा करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होगई। पूजासे उठतेही नानासे कहने लगे—नानाजी ! आप ठाकुरजीकी पूजा करते हो, हमें भी बतावो, हमभी ठाकुरजीकी पूजा करेंगे। नाना बोला बेटा ! जब मैं कहीं बाहर जाऊं तब तुम पूजा करना। यह सुन नामदेव चुप होगये। उसी दिनसे नामदेवका यह नियम हो गया कि, नित्य प्रातःकाल उठकर नानाकी पूजा गुपचुप देखा करते और जो कुछ वे भजन कीर्तन करते उसे, ध्यान लगाकर बडे प्रेमसे सुना करते थे।

कुछ दिनोंके पश्चात् एक दिन कहीं नानाको अन्य ग्राम जानेकी आवश्यकता हुई, जाते समय ठाकुरजीको भी साथ ले जाने लगे, देखकर नामदेवजीसे न रहे गया। कहने लगे नानाजी आपने तो कहा था कि जब कहीं मैं बाहर जाऊं तब तुम ठाकुरजीकी पूजा करना, फिर अब साथ क्यों लिये जाते हो ? यहीं धरजाओ मैं पूजा किया करूंगा। बच्चेके मुखसे ऐसी सीधी सादी बातोंको सुनकर नानाने ठाकुरजीको वहीं रख दिया और कहने लगा कि अच्छा लो, कल प्रातःकाल से तुम पूजा करो। सुनकर नामदेवजी बडे प्रसन्न हुए। अन्धा क्या चाहे दो आंखे ? बहुत दिनोंसे रास्ता देखते २ नामदेवजीको ठाकुरजीकी पूजा करनेका अवसर हाथ आया।

नाना तो चले गये किन्तु इन्हें चैन कहां ? बारबार मनमें यही अभिलाषा उठने लगी कि, कब प्रभात हो और कब मैं ठाकुरजीकी पूजा करूं। ऐसेही करते २ दिन ज्यों त्यों व्यतीत हुआ। रात्रिको अपनी नानीके साथ सो रहे। किन्तु सोते समय भी पूजा करनेकी लालसा मन मेंसे दूर नहीं हुई। इनके तो मनमें वही बात लग रही थी कि, कब प्रभात हो और कब मैं ठाकुरजीकी पूजा करूं। अभी आधी रात्रिका भी समय नहीं होने पाया था कि इनकी आंख खुल गई। प्रेमीको नींद कहां आती है, कबीर साहबने कहा है —

विरहिनको नहिं परत है, इक पल कल दिन रैन।
कैसे ताके आवही, नींद, निगोडी नैन ।।

प्रियतमके दर्शनकी अभिलाषासे जिस विरहिनीको रात्रिदिवसमें एक पलमात्र भी चैन नहीं है उसके नेत्रोंमें यह दुष्टिनी निद्रा किस प्रकार आ सकती है ?

नामदेवजी कहने लगे, नानी ! चल ठाकुरजीको उतार दे, मैं पूजा करूंगा। नानी बोली बेटा ! अभी बहुत रात है चुप होकर सो जा, प्रभात होने दे फिर पूजा करना ! पर

---

१ नामदेवजीको छीपी के बदले कोई कोई सीवी अर्थात् दर्जी भी कहते हैं।

इन्हें तो नींद कहां ? रह २ कर थोडे२ समयमें नानीको जगाते रहे, अन्तमें नानीने दुःखी होकर कहा कि अरे बावना ! आज तो तूने मुझे जरा भी सोने नहीं दिया ? अभी बहुत रात है भैय्या सोजा, प्रभात हो तब पूजा करना। इसी प्रकारसे ज्यों त्यों रात्रि व्यतीत हुई किंतु, अभी सूर्योदय नहीं होने पाया था कि नामदेवजीने नानीको जगाकर कहा कि, ले नानी! अब तो सबेरा होगया मुझे स्नान करको जलने देदे। नानी बोली भैय्या ! ठंड बहुत पड़ती है, जल गरम करने दे, फिर स्नान करना, ठंढे पानीसे स्नान कैसे करेगा ? किन्तु नामदेवजीने एक न सुनी, झट ठंढे ही पानीसे स्नान कर लिया। नानी भी उसका भक्तिभाव देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और ठाकुरजीको उतार कर दे दिया। उन्होंने ठाकुरजीको तो पाटपर धर दिया और आप सन्मुख आसन बिछाकर बैठ गये। नानीसे कहने लगे नानी ! तू थोडा दूध भोग लगाने के लिये मुझे लादे फिर तू यहांसे चली जा, मैं ठाकुरजीकी अकेलाही पूजा करूंगा। नानी मुस्कराती हुई गई और थोडासा दूध लाकर धर दिया और आप अपने घरके काजमें जा लगी।

नामदेवजीने ठाकुरजीको स्नान कराकर कपडेसे पोछा, चन्दन लगाया वस्त्राभूषण पहनाये, पुष्प चढाये यहांतक तो सब ठीक हुआ अब भोग लगानेका समय आया, नामदेवजीने दूधका कटोरा लाके संमुख धरा और कहा लो यह दूध पीओ ! भला जडमूर्ति भी कहीं दूध पीती है किंतु ये मूर्तिके दूध पीनेका रास्ता देखने लगे, पांच मिनट गुजरे, दश मिनट गुजरे बीस मिनट गुजरे परंतु मूर्ति जरा भी न कसमसाई। तब तो नामदेवजीने समझा कि दूध कुछ थोडा है इस कारण ठाकुरजी नहीं पीते हैं ! कहने लगे-ठाकुरजी ! आप दूध क्यों नहीं पीते हो ? क्या कुछ दूध थोडा है ? तुम भी तो छोटे ही हो इतना पीलो ! फिर नानीसे और मांग लाऊँगा। मूर्ति तो उसी प्रकार ज्योंकी त्यों अचल बनी रही। तब तो इन्होंने जाना कि, आज मुझसे कुछ पूजा नहीं बनी, इससे ठाकुरजी अप्रसन्न हो गये हैं, इस कारण दूध नहीं पीते हैं। अब लगे हाथ जोडकर प्रार्थना करने, हे ठाकुरजी ! मैं तो अभी अज्ञान बालक हूँ, मैंने कभी पूजा नहीं की है, तुम्हारी पूजा करना मैं क्या जानूं ? यदि पूजा करनेमें कुछ अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिये और दूध पी लीजिये। इस प्रकार बहुत कुछ प्रार्थना करने पर भी जब मूर्ति जरा भी न पसीजी, तब तो चरणोंपर जा गिरे और कहने लगे मेरा जो कुछ अपराध हुआ हो सो क्षमा करके तुम दूध पी लो, मूर्तिने तो फिर भी न सुना मूर्ति तो जड़ थी वहां सुनने वालाही कौन था ? और वह भी इस बातको कहां जानते थे कि, नाना टाकुरजीके संमुख यों ही दूध रख देते हैं और झूठ मूठका भोग लगाकर आप ही गटक जाया करते हैं ? वह तो यही जानते थे कि ठाकुरजी सचमुच दूध पीते होंगे किंतु, आज मेरे हाथसे नहीं पीते हैं इसके हृदयमें बड़ा ही कष्ट हुआ। लगे बिलख २ कर रोने, तिसपर भी मूर्तिको तो किञ्चिन्मात्र दया न आई ! दया आती ही किसको ? भला कहीं जड पदार्थको भी दया आया करती है ? कभी नहीं।

अब तो उन्होंने जाना कि, नानाके हाथसे तो ये दूध पीते थे मैं बडा पापी हूँ, इस कारण दूध नहीं पीते हैं ऐसा विचार करके यह ऐसे दुःखी हुए कि उनका दुःख सीमासे भी बढकर अपार हो गया। पासही एक छुरी-पड़ी हुई थी उसे हाथमें ले लिया और ज्यों ही चाहते हैं कि गला काटकर अपने प्राण ठाकुरजीको अर्पण कर दूं त्यों ही तत्काल मूर्तिने एक हाथसे

नामदेवका हाथ पकड लिया और दूसरे हाथसे दूधकी कटोरी उठाकर गट २ दूध पीने लगी। इसीसे सद्गुरुने कहा है —

यह तो घर है प्रेमका, खालाका घर नाँहि ।।
शीश काटि चर्णों धरे, तब बैठे घर माँहि ।।

हे भाई ! यह प्रेमका घर है सच्चा प्रेम मृत्युकी निशानी है खालाका घर नहीं है। खालाके घरका यह अभिप्राय है कि खाला कहते हैं माताकी बहन मौसीको सो माता तो अपने बच्चोंपर शिक्षाके निमित्त कभी २ कुछ क्रोधित भी होती हैं, मारती पीटती भी है और मौसी, तो अपनी बहनके बच्चे जानकर लाख नुकसान करने पर आधी बात नहीं कहती, इसका कारण बच्चों को मौसीके घरमें विशेष सुख होता है और प्रेममें तो अपने प्रेमीके चरणों में अपना मस्तक काटके धरना पडता है तब कहीं प्रेमके घरमें प्रवेश करने पाता है।

प्रेमपियाला जो पिये, शीश दक्षिणा देय।
लोभी शीश न देसके, नाम प्रेमका लेय ।।

हे भाई ! प्रेम अमृतका प्याला वही पीता है, जो अपना मस्तक प्रेममें अर्पण कर देता है। और लोभी पुरुष तो अन्य द्रव्यादिक पदार्थ भी किसीको नहीं देता है तो अपना मस्तक कैसे दे सकता है ?अतएव वह सच्चा प्रेमी नहीं है वह तो केवल प्रेमका नाममात्रही लेताहै।

प्रेम न वाडी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा रानी जो चहे, शिर साटे लैजाय ।।

प्रेम किसी बगीचेके खेतमें बोनेसे नहीं उत्पन्न होता है और न बाजारमें बिकता हुआ मोल मिलता है, प्रेमके लिये चाहे राजा हो चाहे रानी हो सबको अपना मस्तकही अर्पण करना पडता है।

योगी जंगम सेवडा, संन्यासी दुरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ सतगुरुदेश ।।

चाहे योगी हो, चाहे जंगम हो, चाहे सेवडा (जैन मत के साधु जिन्हें ढ़ंढ़िया कहते हैं सो,) हो चाहे संन्यासी परमहंस हो, और चाहे दुरवेश अर्थात् फकीर हो, किन्तु, विना प्रेमके सतगुरु के देशमें किसीका भी पहुँचना असंभव है।

प्रेमपियाला नामरस, चाखत अधिक रसाल।
कबिरा पीना कठिन है, माँगे शील कलाल ।।

प्रेमरूपी प्यालेमें सत्यनाम अर्थात् त्रिकालबाध्य जिसका नाम है ऐसा जो परमात्मा है, यह बात अन्यमतावलम्बी भी स्वीकार करते हैं कि "प्रेमही परमात्मा है" (Love is god) इश्कही खुदा है इत्यादि सब एकही स्वर अलापते हैं, वह चाखनेमें अर्थात् उसका स्वाद अनुभव करनेमें अमृत रसके समान महान सुखदाई है, परन्तु, सतगुरु कहते हैं कि हे भाई ! उस प्रेमके प्यालेका पीना बहुत कठिनहै क्योंकि उसका पिलानेवाला कलाल जो गुरु है वह उसके–

बदलेमें मस्तक माँगता है, इसीसे कहा है कि "शिरके साटे ये सौदा बने संत वैपारीका" भावार्थ यही है कि, जब तक अपनी अस्तिका ज्ञान है तब तक वह सच्चा प्रेम नहीं है। सच्चा प्रेम तो उसीका नाम है कि, जब अपनी अस्तिको भूलकर प्रेमीहीका रूप आप भी बनजाय जैसे—

जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु हैं मैं नांहि।
प्रेमगली अतिसाकरी, तामें दो न समांहि ।।

जब तक हृदयमें आपा अहंकार हो तब गुरुकी यथार्थ भक्ति कहां है? क्योंकि, हृदयमें जहां प्रेम रहता है वह स्थान तो महान संकीर्ण है उसमें तो या आपही रहे या गुरुको रखे केवल एकही रख सकता है दोकी गुजर नहीं है।

अब इस विषयको यहीं समाप्त करके हम अपनी उक्त कथाको कहते हैं कि—

ठाकुरजीको दूध पीते देखकर नामदेवजी मुस्कराये और कहने लगे कि, भला तुमको पहले इतनी देरतक क्या हुआ था? जो दूध नहीं पीते थे! मूर्ति भी मुस्कराती जाती थी और दूध पीती जाती थी जब नामदेव जीने देखा कि, मूर्ति तो दुष्कालके भुक्खड़के समान सभी दूध पिये जाती है तब तो इनसे न रहागया। ठाकुरजीके मुखपर एक बडे जोरसे तमाचा लगा कर कहने लगे कि, नानाजीको प्रसाद लेनेके लिए तो कुछ दूध रोज छोड़ दिया करते थे आज सभी पी जावेंगे तो मैं प्रसाद क्या लूंगा? वाह धन्य है इस भोलेपनको सत्य श्रद्धाको मूर्तिने कटोरा धर दिया नामदेवजीने तत्काल कटोरा उठाकर दूध पीलिया और फिर ठाकुरजीके गलेमें हाथ डालकर पूछते रहे कि, आज तुमने इतना कष्ट मुझे क्यों दिया? ठाकुरजी भी इनके साथ हँसते खेलते रहे।

जब दो पहरका समय हुआ तब नानी पुकार कर कहने लगी कि,अरे नामदेव! आज तुझे क्या हो गया है? कि, जो तू खानेपीनेकी भी याद भूल गया है, चल रोटी खाले। नामदेव हँसते रहे, नानीजीने ठाकुरजीको तो उठाकर ताखपर धर दिया और नामदेवका हाथ पकड कर रोटी खिलानेको ले आई।

अब तो नित्य इसी प्रकारसे जब नामदेव पूजा करके दूधका भोग धरते तो आनन्द पूर्वक ठाकुर जी दूध पी लेते और नामदेवजीके साथ कुछ देर खेला करते।

कुछ दिनोंके पश्चात् नानाजीभी गांवसे आगये, आतेही नामदेवसे पूछने लगे बेटा तूने ठाकुरजीकी पूजा की थी? नामदेवजीने कहा नानाजी! तुम्हारा ठाकुर बडाही हठीला है, पहले दिन मुझे बहुत दुःख दिया, दूध नहीं पीता था दो घण्टे तक मैं रो रो कर मनाता रहा कि दूध पीलो। दूध पीलो! किन्तु उसने तो एक न मानी।अंतमें जब छुरीसे मैं अपना गलाकाट कर उसे अपने प्राण अर्पण करदेना चाहा तब तो उसने तत्काल मेरा हाथ एक हाथसे पकड लिया और दूसरे हाथसे दूधका कटोरा लेकर पीने लगा मैंने देखा सबका सब दूध पिये जाता है तो सोचा मैं प्रसाद क्या लूंगा? तब तो मुझसे न रहा गया, मैंने उसके मुंहपर एक ऐसा थप्पड़ धर जमाया कि, उसे भी कुछ दिनों तक अच्छीतरह याद रहेगी। उस दिनसे तो अब सीधा होगया, भोग लगातेही झट दूध पीलेता है और कुछ देर मेरे साथ खेला भी करता है।

यह बात सुनकर नानाको बडा आश्चर्य हुआ कहने लगा मुझको भी दिखा। नामदेवने कहा अच्छा। कल दिखाऊंगा।

दूसरे दिन नामदेवने प्रातःकाल उठकर स्नान किया ठाकुरजीकी पूजा करके भोग धरा, जब ठाकुरजी कटोरा लेकर दूध पीने लगे तब नामदेवजीने अपने नानाको पुकारा नाना आओ ! नाना वहां जाकर देखते हैं तो ठाकुरजी सचमुच कटोरा लिये दूध पी रहे हैं, देखकर नानाने ठाकुरजीको दण्डवत की और अपने भाग्यकी प्रशंसा करने लगा कि धन्य है मेरा भाग्य ! जो नामदेवके समान भक्तने मेरे घर आकर जन्म लिया है।

अब यह बात समझमें आगई होगी कि, उस जडमूर्तिने दूध कैसे पिया था ? क्या यह बात संभव है कि जडमूर्ति दूध पी सकती है ? हम कहते हैं कभी नहीं, जडमूर्ति कभी दूध नहीं पी सकती है। तो फिर क्या यह कथा झूठी है ? नहीं यह कथा भी झूठी नहीं है। कथा तो सत्य ही है, परन्तु तुम जरा इस बातका तो विचार करो कि क्या ये संसारमें जितनी मूर्तियें खाने पीनेवाली चैतन्य हैं क्या ये सब चेतनकी मूर्तियें हैं ? नहीं मूर्तियें तो सब जडकी ही हैं किन्तु उनमें चेतनकी सत्ता होनेसे चैतन्य हैं, तैसेही नामदेवजीने भी अपनी सत्ताको प्रवेश कराके उस जड मूर्तिको चैतन्य बना दिया था, इसप्रकार अपनी सत्ताकाप्रवेश कराना साधारण काम नहीं है इसमें प्रथम दृढ़ श्रद्धा सहित सत्य प्रेमकी आवश्यकता है। जिस प्रेममें भर मिटना पडता है। जैसे कबीर साहबने कहा है।

जबलग मरनेसे डरे, तबलग प्रेमी नाहिं।
बडी दूर है, प्रेमघर, समुझि लेहु मनमाहिं ।।

जबतक मनुष्य अपने शरीरकी आशा रखकर मरनेसे डरता है तबतक वह सच्चा प्रेमी नहीं है यह बात तुमको नामदेवजीकी कथासे विदित हो गई होगी कि उन्होंने अपना प्राण अर्पण करनेमें किसी प्रकारसे कसर नहीं रखी थी और न पूजा करते समय उनका यह ध्यान था कि, यह तो जडमूर्ति है दूध नहीं पिवेगी। वह तो अपने हृदयमें निश्चय पूर्वक यही जानते थे कि मूर्ति सचमुच दूध पीती है किन्तु और जो जड मूर्तियोंकी पूजा करते हैं वे अपने मनमें यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि, यह जड़ मूर्ति है कुछ खाती पीती नहीं है जैसे कि नामदेवजीके नाना ऐसे ही जानकर पूजा किया करते थे वैसे ही सब किया करते हैं। इसी कारण सद्गुरुने कहा है कि–

ऐसेहि करत करत जड पूजा, आपहि जड बन जावे।
कहे कबीर ज्ञान सतगुरुका, कैसे हृदय समावे ।।

कबीर साहब कहते हैं कि, इसी, प्रकारसे जडमूर्तिका ध्यानोपासना करते २ मनुष्य आप भी जड़ बन जाता है, जैसे कि, श्रुतिमें कहा है कि "जो जिसकी उपासना करता है वह उसीका रूप बन जाता है" तो जो मनुष्य चेतनसे जड़ बन जाता है तो फिर उसके हृदयमें सतगुरुका ज्ञान कैसे प्रवेश कर सकता है ? किसी प्रकारसे नहीं।

इसी कारणसे कबीर साहबने जड मूर्तिकी उपासनाका निषेध करके गुरुकी चेतन मूर्तिकी उपासनाका विधान किया है, सो केवल एक कबीर साहबनेही विधान नहीं किया है किन्तु, समस्त वेद शास्त्र पुराण एकस्वरसे यही पुकार २ कहते हैं कि :—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाःप्रकाशन्ते महात्मनः ।।

जैसे परमात्माकी परम भक्ति की जाती है तैसेही, जो कोई गुरुकी भक्ति करता है उसीको शास्त्रमें कहे हुए सिद्धान्तका ज्ञान प्राप्त होता है।

अब यहां यह शंका होती है कि संसारमें जहांतक हम दृष्टि पसार कर देखते हैं तहांतक हमें सब गुरुही गुरु दिखाई देते हैं; माता भी गुरु है, पिता भी गुरु है, वृद्ध भी गुरु है, विद्या पढानेवाला भी गुरु है, कलाकौशल सिखानेवाला भी गुरु है, अच्छी सम्मति देनेवाला भी गुरु है, मार्ग बतानेवाला भी गुरु है, क्रिया कर्म करानेवाला भी गुरु है, दान दक्षिणा लेनेवाला भी गुरु है, तीर्थके पण्डे भी गुरु हैं, इत्यादि २ कहांतक गिनावें इनमें किसकी उपासना करनी चाहिये ? इसके उत्तरमें सत्‌गुरुने कहा है कि :—

यदपि सकल गुरु पूज्य हैं, निज निज ठौर अशेष।
तदपि मोक्ष प्रद परम गुरु, है सब माहिं विशेष ।।

यद्यपि माता पिताको आदि लेकर किसी गांवको जानेका रस्ता बतानेवाले तक संसारमें जितने गुरु हैं सो सभी पूज्य अर्थात् सत्कार करने योग्य हैं, तो भी जो जन्म मरणादि अनेक प्रकारके दुःखोंसे छुडा कर अखण्ड सुख, मोक्षपद प्राप्त करानेवाले गुरु हैं वे ही सबोंमें परम श्रेष्ठ हैं। अतएव उन्हींका विशेष पूजन करना उचित है, क्योंकि–

कर्मजालमें हैं फँसे, देवी देव अशेष
शक्ति गणेश दिनेश अरु, ब्रह्मा विष्णु महेश ।।

संसारमें जितने देवी देवता हैं, क्या शक्ति क्या गणपति, क्या सूर्य, क्या ब्रह्मा, क्या विष्णु, क्या महादेव सब अपने अपने कर्मोंके बन्धनमें फँसे हैं।

सूर्य्य भवानी गणपति विष्णु शंकर देव।
वादग्रस्त मुनि व्यासने, वर्णी इनकी सेव ।।

---

१ महाराजा भर्तृहरिने भी कहा है "ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे, विष्णुर्येन दशावतारगहने, क्षिप्तो महासंकटे। रुद्रो येन कपालपाणिपुटके, भिक्षाटनं कारितः, सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्म्मणे ।।"

जिस कर्मने ब्रह्माको कुम्हारकी नाईं निरन्तर ब्रह्माण्डरचनाके लिये बनाया तथा विष्णुको बराबर दश अवतार धारण करनेके संकटमें डाला और महादेवको कपाल हाथमें पकडा कर घर २ भिक्षा मँगाया तथा सूर्यको आकाशमें भ्रमण करके चक्रमें डाला उस कर्म्मको नमस्कार है।

तासे शैवादिक सकल, बिन गुरु ज्ञान अबोध।
लडें परस्पर क्रोध करि, धरि उर परम विरोध ।।

सूर्य्यदेवता, भगवती विघ्नहरण गणेश, विष्णुभगवान् और शंकरइन्ही पांच देवताओंके नामसे सूर्यपुराण, देवीभागवत, गणेश पुराण विष्णुपुराण और शिवपुराण महर्षि व्यासजीने बनाये हैं किन्तु इनके अतिरिक्त पद्मपुराणादि और भी अनेक पुराण व्यासजीने बनाये हैं, उनमें किसीमें तो विष्णुको श्रेष्ठ और अन्य सब देवोंको न्यून तथा किसीमें शिवको श्रेष्ठ और अन्यसब देवोंको न्यून इसी प्रकार प्रत्येक के लिये पुराणोंमें बडाही वादग्रस्तविषय वर्णन किया है जिसके शैव वैष्णवादि प्रत्येक मतानुयायी विना सद्गुरुके ज्ञान मूर्खतासे अपने २ हृदयमें एक दूसरेसे विरोध मानकर क्रोधसहित परस्पर रात दिन लड़ा भिडा करते हैं।

इस विषयमें एक प्रसंग महात्मा निश्चलदासजीने विचारसागरमें इस प्रकार वर्णन किया कि :—

शुभ सन्तति नृप सो बडभागा। भयो प्रथम तेहि
मन्द बिरागा ।। जिज्ञासा उपजी यह ताको। देव
ध्येय को? ध्याऊँ जाको ।। पंडित निर्णय करन
बुलाये। यथायोग्य आसन बैठाये ।। प्रश्न कियो यह
सबके आगे ।। अस को देव न सोवे जागे ।। पुरुषारथ
हित जन जेहि जांचे। भक्ति मानके मनमें रांचे ।।

एक शुभसन्तति नामका बडा भाग्यवान् राजा था उसे पहिलेही पहले मन्द विराग उत्पन्न होकर यह जाननेकी इच्छा हुई कि इस संसारमें उपासनाकरने योग्य कौन देवता है? कि, जिसकी मैं उपासना करूं। इसका निर्णय करनेको प्रत्येक मतके विद्वानोंको बुलाया और उन्हें यथायोग्य आसनोंपर बिठाया सबके सन्मुख राजाने यह प्रश्न किया कि, ऐसा कौनसा देव है? जो निवृत्तिप्रवृत्तिसे निर्द्वन्द्व रहता है, और मुक्तिके लिये जिससे लोग याचना करते हैं तथा भक्तोंके मनमें जिसका भाव उत्पन्न होता है।

सुनि यह पृथिवीपतिकी वानी। तिनमें इक बोल्यो
सुज्ञानी ।। सुन राजा तोहि कहों सो देवा ।। शिव
विरञ्चि जेहि लागे सेवा ।। शत्रु चक्रधारी हितकारी।
पद्म गदाधर पर उपकारी ।। मंगल मूरति विष्णु
कृपालू ।। निज सेवक लखि करत निहालू ।। शक्ति
गणेश सूर्य शिव जे हैं। सब आज्ञा ताकीमें ते हैं ।।

यह बात राजाकी सुनकर उनमेंसे एक विद्वान् कहने लगा कि सुन राजा! तुझको मैं वह देव बताता हूँ कि जिसकी सेवामें महादेव और ब्रह्मा भी लगे हैं, और वह कैसा है? शंख

चक्र, गदा, पद्म, धारण किये सबका हित करनेवाला परोपकारी है। वह मंगलरमूति परम कृपालु आप विष्णुभगवान् हैं कि, जो अपने भक्तको देखते ही उसका कृतार्थ करते हैं और जिनकी आज्ञामें शक्ति, गणेश, सूर्य, शिव जितने देव हैं सब रहते हैं।

भारत सकल ग्रन्थ यह भाखे। पद्म पुराण तापिनी आखे ।। विष्णुरूप ते उपजे सबहीं। परै भीर जांचै तेहि तबहीं ।। विविध वेषको धरि अवतारा। सब देवनको देत सहारा ।। याते ताकी कीजे पूजा। विष्णुसमान देव नहिं दूजा ।।

इस बातको समस्त महाभारत, पद्मपुराण, रामतापिनी, गोपालतापिनी इत्यादि सभी ग्रन्थ कहते हैं कि–शिव, शक्ति, आदि जितने देव हैं सो सब विष्णुहीसे उत्पन्न हुए हैं और विष्णुही अनेक प्रकारके रूपसे अवतार धारण करके सब देवोंकी सहायता करते हैं, इस कारणसे विष्णु हीकी पूजा करनी चाहिये। क्योंकि, विष्णुके समान दूसरा देव नहीं है।

विष्णुभक्त शिव उत्तम कहिये। तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये ।। रूप अमंगल शिवको शवसम। ध्यान करें नहिं ताको यूं हम ।। राख डमरु गजचर्म कपाला। धरे आप केहि करे निहाला ।। ताको पूत गणेशहु तैसो। रूप विलक्षण नर पशु जैसो ।।

यद्यपि शिवजी भी विष्णुके परम भक्त हैं तो भी उनका स्वरूप उपासना करने योग्य नहीं है, क्योंकि उनका रूप अमंगल मुर्दाके समान है इस कारणसे हम उनका ध्यान नहीं करते हैं तथा जोआपही राख, डमरू, हाथीकी खाल और कपाल धारण किये हैं वे और दूसरे किसको निहाल करनेवाले हैं ? तथा उनके जो पुत्र गणेश हैं वे भी तो वैसेही अद्भुत रूपवाले कुछ मनुष्य और कुछ पशुके समान हैं।

शठ हठसे जे ध्यावत देवी, ता सम रूप धरत तेहि सेवी ।। तिय निन्दित अतिसै अपवित्रा। अवगुण गिने न जात विचित्रा ।। कपट कूटको आकर कहिये। पराधीन निज तत्र न लहिये ।। ऐसो रूप जो चहिये जाकू। सो सेवहु नर खर सम ताकू ।।

तैसेही जो कोई मूर्ख हठसे देवीकी उपासना करते हैं वे उपासनाकरनेवाले भी उसीके समान रूपको पाते हैं कि जो स्त्री महानिन्दित और अत्यन्त अपवित्र है, जिसमें कि एकसे एक विचित्र इतने अवगुण हैं कि जो कि नहीं जाने सकते हैं ऐसा रूप जिसको चाहिये वह मनुष्य गधेके समान देवीकी सेवा करे। उसकी यह लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है कि "जैसी देवी शीतला तस वाहन खर जान।"

शिवसेवक सुनिके अस बैना । क्रोध सहित बोल्यो चलनैना ।। सुन राजा बानी इक मोरी । जामें वचन प्रमाण करोरी ।। शिवसमान आन को कहिये। मांगे देत जाहिर जो चहिये ।। सब विभूति हरिको दै मांगी । धारिविभूत आप नित त्यागी ।।

ऐसी बातोंको सुनकर शिवका सेवक क्रोध सहित आंखें निकाल कर कहने लगा, हे राजा ! मेरी भी एक बात सुनले कि जिसमें करोडों वचन प्रमाण हैं, भला कहिये तो, शिवके समान और ऐसा कौन देव है ? कि, जिसको जो चाहिये वही उसको मांगनेसे दे दे; और कहां तक कहें ? विष्णुको भी तो सब ऐश्वर्य शिवनेही मांगनेसे दिया है और आप भस्म धारण किये सदा त्यागी हैं ।

चर्म कपाल हेतु यदि धारे । उर नहिं उत्तम अधम विचारे ।। नग्न रहत उपदेशत येही । नहिं वैराग सम सुख ह्वै केही ।। सदावर्त ऐसो देय भारी । काशीपुरी मरे नर नारी ।। सो सायुज्य मुक्तिको जावे । गर्भवास संकट नहिं पावे ।।

और जो गजचर्म तथा नरकपाल शिवजीने धारण किया है उसका कारण यह है कि, उनके हृदयमें उत्तम मध्यमका कुछ विचार नहीं है, सब पदार्थोंमें समबुद्धि है और आप नग्न रहकर यह उपदेश करते हैं कि, विराग के समान और किसीमें सुख नहीं है ? और काशीपुरीमें आप ऐसा सदाव्रत देते हैं कि वहां जो कोई स्त्री अथवा पुरुष मरता है वह सायुज्य मुक्तिको पाता है और उसे फिर गर्भवासका दुःख नहीं भोगना पडता ।

शिवसमान नर नारी ते सब । लहत सुदिव्य भोग सगरे तब ।। करत आप अद्वय उपदेशा । तजत लिंग यूं ब्रह्म प्रवेशा ।। ऊंच नीच रंचहु नहिं देखे । मुक्ति सबनको देय इक लेखे । शिव समान राजन् को दाता । भक्त अभक्त सबोंका त्राता ।।

वहां शिवके समान सब स्त्री पुरुषोंको दिव्य भोग मिलते हैं और आप शिवजी सबको अद्वैतका उपदेश करते हैं जिससे कि, शरीर छूटतेही उनका ब्रह्ममें प्रवेश होजाता है तथा ऊंच नीचका जिन्हें किञ्चित विचार नहीं, सबको एकसमान मुक्ति प्रदान करके भक्त अभक्त सबका उद्धार करनेवाले हैं, अतएव हे राजन् । शिवके समान दूसरा कौन ऐसा देव है ?

विष्णु स्वभाव सुन्यो हम ऐसो। जगमें जन प्राकृत हैं तैसो ।। त्राता भक्त अभक्त न त्राता। यह प्रसिद्ध सब जगमें नाता ।। हरि सेवक हर सेव्य बखान्यो। राम-चन्द्र रामेश्वर मान्यो ।। स्कन्द पुराण व्यास बहु भाख्यो। हरि सेवक हरसेव्यहि राख्यो ।।

और विष्णुका स्वभाव तो हमने इस प्रकार सुना है कि, जैसे जगतमें और प्राकृत मनुष्य हुआ करते हैं कि, अपने भक्तकी तो वे रक्षा करते हैं और अभक्तकी नहीं, यह तो जगतमें सबहीका प्रसिद्ध नाता है। तथा विष्णु सेवक और शिवको सेवन योग्य इस कारणसे कहा कि, रामचन्द्रजीने रामेश्वरको माना है और स्कन्दपुराणमें व्यासजीने बहुत कुछ वर्णन करके विष्णुको सेवक और शिवको सेवन योग्य ही रक्खा है।

कह्यो जो भारत पद्मपुराणा। सब देवनते हरि अधि-काना ।। भारत तात्पर्य नहिं देख्यो। जो अप्पय दीक्षित बुध लेख्यो ।। शिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो। भक्तनमें उत्तम हरि मान्यो ।। ईश देव पद सबमें कहिये। महत्त सहित इक शिवमें लहिये ।।

तथा विष्णुके उपासकनेजो यह कहा कि भारत और पद्मपुराणमें सब देवोंसे श्रेष्ठ विष्णुको कहा है, तो क्या ? तुमने अप्पय दीक्षितने (जो एक महान् विद्वान् हुआ है, जिन्होंने कि समस्त पुराण और इतिहासके तात्पर्य लिखते समय) भारतके एक प्रसंगमें लिखा है उसे नहीं देखा है? कि, जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्र और आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया तो और सेनाका तो संहार हुआ किन्तु पांडवोंमेंसे कोई एक भी नहीं मरा, तब अश्वत्थामा रथको त्याग कर धनुर्वेद और आचार्यको धिक्कार देता हुआ वनको चला। मार्गमें उसे व्यास भग-वान् मिले और उसे कहने लगे कि, हे ब्राह्मण ! तू आचार्य और वेदको क्यों धिक्कार देता है ? ये कृष्ण और अर्जुन तो दोनों नरनारायणरूप हैं। इन्होंने शिव की बडी उपासना की है इस कारणसे इनकी भक्तिके अधीन त्रिशूलपाणी महादेव इनके रथके आगे चलते हैं वह इनके ऊपर किसीके अस्त्र शस्त्रका प्रभाव नहीं होने देते हैं।

उक्त भारतके प्रसंगसे यह स्पष्ट विदित होता है कि भगवान् कृष्णचन्द्रजीको समस्त ऐश्वर्य महादेवजीकीही कृपासे मिला है इस कारणसे सबने सब देवोंमें शिवहीकी श्रेष्ठ प्रति पादन करनेयोग्य कह रक्खा है, और भक्तोंमें परम भक्त विष्णु गिने गये हैं। तैसेही और सब देवता तो "ईश" और "देव" कहे जाते हैं किन्तु एक शिवजीके ही साथ "महत्" शब्दका प्रयोग किया जाता है "महेश" "महादेव"।

शिवते भिन्न अशिव जेहि कहिये। शिव तजि तेहि कल्याण न लहिये ।। जलशायी जेहि नाम बखानो।

सो जागे यह मिथ्या जानो ।। विष लखि जब सबको उपजो डर। निर्भय कियो सकल गर धरि गर ।। जाको पूत गणेश कहावै। विघ्नजाल तत्काल नशावै ।।

शिव कहते हैं कल्याणको और शिवसे जो भिन्न है सो अशिव अकल्याणरूप है. इस कारण शिवको त्यागके और किसी देवसे कल्याण नहीं प्राप्त होता है और जिसका नामही जलसायी कहते हैं वह कभी जगे यह बात झूठी है तथा जिस समय असुर और देवताओंने समुद्र मथन किया उस समय समुद्रसे विष भी निकला था जिसको देखकर सुर और असुर सभी भयभीत हुए थे तब शिवहीने उस विषको कंठमें धारण करके सबको निर्भय किया था। उन्हींके पुत्र गणेश हैं इसी कारणसे वे तत्काल विघ्नको नाश करनेवाले हैं।

कारजमें कारण गुण होवे। यूं शिव विघ्न मूलसे खोवे ।। जन्म मरण दुःख विघ्न कहावे। तेहि समूल शिव ध्यान नशावे ।। सेवन योग्य सदाशिव एका। जागे सहित समाधि विवेका। तंत्र पाशुपति रीति जुगावे। त्यों पूजन करि ध्यान लगावे ।।

कार्यमें कारणही का गुण होता है जैसे शिवजी विघ्नको मूलसे नाश करने वाले हैं तभी तो इनके पुत्र गणेशमें भी विघ्नके नाश करनेका गुण है। जन्म मरणके दुःखको विघ्न कहते हैं, तिस विघ्नको शिवका ध्यान मूल सहित नाश कर देता है। अतएव सेवा करने योग्य एक सदाशिव ही हैं कि, जिसके प्रतापसे समाधिसहित विवेक उत्पन्न होता है और उन शिवजी की उपासना इस प्रकार करनी चहिये कि जिस रीतिसे पाशुपति तंत्रमें जैसी कही है वैसे ही पूजन करके ध्यान लगाना चाहिये।

नारद पंचरात्र मत झूठो। यह परिमल परसंग अनूठो ।। याते शिवसेना चित लावे। पुरुषारथ जो चाहे सो पावे।

और नारदपंचरात्रमें जो कुछ विष्णुका माहात्म्य वर्णन है सो झूठा है क्योंकि सूत्र भाष्यमें उसको खण्डन किया है जिसके अनुसारसे कल्पतरुकी टीका परिमलमें विस्तारसे वर्णित है इस कारण शिवकीही सेवामें चित लगावो तो अर्थ, धर्म, मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंमें से जो कुछ चाहोगे सोई प्राप्त होगा।

शिवको पूत गणेश बतायो। कारण गुन कारजमें गायो ।। सुनि गणेशको पूजक बोल्यो। अस कियो कोप सिंहासन डोल्यो ।। राजन् सुन दोनों ये झूठे।

बचन सत्यसम कहत अनूठे ।। शिवको पूत गणेश बतावें । पराधीनता तामें गावें ।।

शिवके उपासकने जब कहा कि गणेश शिवका पुत्र है और पिताहीके गुण पुत्रमें हैं इस कारणसे गणेश विघ्नको नाश करनेवाले हैं, इस बातको सुनकर गणेशका उपासक एक विद्वान् ऐसा क्रोध करके बोला कि राजाका सिंहासन तक हिल उठा, वह कहने लगा कि, सुन राजा ! बात तो ये अद्भुत सत्यके समान करते हैं किन्तु, यह विष्णु उपासक और शिव-उपासक दोनों झूठे हैं और जो यह शैव कहता है कि गणेश शिवका पुत्र है तथा पराधीन है, तो —

कहूं प्रसंग सुनहु इक ऐसो । लिख्यो व्यासभागवत मुनि जैसो ।। चढ़े त्रिपुर मारनको सारे । हरि हर सहित देव अधिकारे ।। नहिं गणेशको पूजन कीनो । त्रिपुर न रंचहु तिनते छीनो ।। पुनि पछितान मनाय गणेशा । त्रिपुर विनाशो रह्यो न लेशा ।।

मैं एक प्रसंग कहता हूँ सो सुनो ! भगवान् व्यास मुनिने पुराणमें इस प्रकारसे वह प्रसंग लिखा है कि, एक समय विष्णु तथा महादेव सहित सब बड़े २ देवता त्रिपुरासुरको वध करनेके लिये गये किन्तु जाते समय गणेशका पूजन करना भूलगये थे, इस कारणसे सबने मिल-कर बहुत कुछ प्रयत्न किया किन्तु, त्रिपुरासुरका किसीसे बाल तकभी बांका न हो सका, तब सबके सब पीछे लौट आये, और अछतापछताके जब गणेशका पूजन करके फिर गये तब शिवने त्रिपुरासुरका वध किया ।

भये समर्थ किये जेहि पूजा । सेवन योग्य सो इक नहिं दूजा ।। रामपूत दशरथको जैसे । विघ्न हरण शिवको सुत तैसे ।। व्यास गणेश पुराण बनायो । सबको हेतु गणेश बतायो ।। हरि हर विधि रवि शक्ति समेता । ताहीसे उपजत सब तेता ।।

जिसकी पूजा करनेसे शिवने त्रिपुरासुरको वध करनेकी शक्ति प्राप्तकी वही उपासना करने योग्य एक देव है दूसरा नहीं, और जैसे राम दशरथका पुत्र है तैसे गणेश भी शिवका पुत्र है, परन्तु व्यासजी ने जो गणेश पुराण बनाया है उसमें तो उन्होंने सबका उत्पन्न करने-वाला गणेशहीको बतलाया है और कहांतक कहें ? विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, सूर्य, शक्ति इत्यादि सब देवता गणेशहीसे उत्पन्न हुए हैं ।

करत ध्यान जेहि छन जन मनमें । नाशत विघ्न प्रधान

गगनमें ।। विघ्न हरण यूं जागतनिशिदिन । भक्ति
सहित सेवहु तेहि अन छिन ।।

जिस समय गणेशका ध्यान मनुष्य मनमें करता है उसी समय उसके विघ्नोंके समूह समस्त नाश हो जाते हैं और विघ्नोंको हरने वाला है तभी तो गणेश रातदिन जागताही रहता है इस कारणसे भक्तिसहित सदा उसकी सेवा करनी चाहिये ।

हेतु गणेश शक्तिको सुनिकै । भक्त भगवती उचर्यो
गुनिकै ।। सुन राजन् बानी मम सांची । तीनों कहत
सकल यह कांची ।। सुने देव शक्ति बिनु सारे । मृतक
देह सम जिमि हत्यारे । शक्तिहीन असमर्थ कहावें ।
सो कैसे कारज उपजावें ?

शक्ति अर्थात् देवीको उत्पन्न करनेवाला गणेश है, यह बात गाणपत्यके मुखसे सुनकर शाक्त कहने लगा, हे राजन् ! मेरी सत्य बातको सुन । ये तीनों अर्थात वैष्णव, शैव और गाणपत्य जो कुछ कह रहे हैं सब झूठ बात है क्योंकि, विष्णु शिवादि जितने देवता हैं यदि उनमें शक्ति, का अंश न हो तो जैसे प्राणविना शरीर मृतक हो जाता है तैसेही वे सब शक्तिके अंश विना मृतकके समान अमंगल होजावें और जिसमें शक्ति नहीं है उसीको असमर्थ कहते हैं तो वह असमर्थ कार्यको कैसे उत्पन्न कर सकता है ?

जिन बहु शक्ति उपासन धारी । ताते भये सकल
अधिकारी ।। हरि हर सूर्य गणेश प्रधाना । तिनमें
शक्ति देखियत नाना ।। शक्ति लोकमें भाखत जाकू ।
रूप भगवतीको लखि ताकू ।। लाख करोरि मात्रिका
गण पुनि । तन्त्र ग्रन्थ लखि अंश सकल गुनि ।

जिस २ देवताने शक्तिकी उपासना विशेषतासे धारण की है उसी उपासनाके प्रतापसे उस २ देवताने सब अधिकार पाया है। विष्णु, शिवसूर्य और गणेश इसी कारणसे श्रेष्ठ गिने जाते हैं कि, उनमें अनेक प्रकारकी शक्ति देख पडती हैं । जिसे संसारमें लोग शक्ति कहते हैं वह भगवतीहीका रूप है तथा तन्त्रग्रन्थोंमें जो अनेक कोटि मात्रिकागणोंका वर्णन है वे सब भगवतीकेही अंश जानो ।

काली ताको अंश प्रधाना । माहेश्वरी आदि लखु नाना ।।
हरि हर ब्रह्म सकल तेहि ध्यावें । निज निज अंश कृपा
तेहि पावें ।। ध्येयरूप ध्याता होय जबही । सिद्ध उपा-
सना लखिये तबही ।। अस उपासना हरि अरु हरकी ।
नारिमूर्ति धारी तजि नरकी ।।

काली तो उस भगवतीका एक प्रधान अंश है ही, किन्तु इसके अतिरिक्त माहेश्वरी आदि और भी अनेक अंश हैं जिनको विष्णु, शंकर, ब्रह्मा सब ध्यावते हैं और फिर उसकी कृपासे अपने २ अंशको पाते हैं।

जिस समय उपासक अपने उपास्यरूपको प्राप्त करले तभी समझना चाहिये कि अब इसकी उपासना सिद्ध हुई। ऐसी उपासना विष्णु और शंकरकीही सिद्ध हुई है कि, जिसकी सिद्धि होतेही दोनों नरसे नारीरूप बनगये हैं।

अमृत मथन संसर्गमें, हरि मोहनी स्वरूप।
अर्ध अंग शिवको लसे, देवी रूप अनूप ।।

सुर और असुरोंके मथन करनेके समय जब समुद्रमेंसे अमृत प्रगट हुआ तब देवता तो कहने लगे कि, अमृत हम लेंगे और असुर कहने लगे नहीं हम लेंगे। इस प्रकारका परस्पर विवाद देखकर विष्णु घबरायेऔर एकाग्रचित करके भगवतीका ऐसा ध्यान किया कि, तत्काल आप अपने उपास्यको प्राप्त होकर मोहनीरूप बनगये। जिसको देखतेही सब असुर मोहित होकर अनुकूल होगये और सारा विवाद मिटगया। तथा शिवने भी ध्यान किया तो उनके हृदयमें कुछ विक्षेप हो आया जिसके प्रभावसे उनका आधाही अंग देवीका होकर रह गया। अतएव-

भक्त भगवतीके हर हरि हैं। इनसम कौन उपासना
करि हैं ।। तदपि महामाया जो ध्यावे। तुरत सकल
पुरषारथ पावे ।। नहि साधन जगमें अस औरा ।। उपजै
भोगे मोक्ष इक ठौरा ।। भक्त भगवतीको जो जगमें।
भोग भोग न आवे भगमें ।।

विष्णु और महादेव तो पूरे भगवतीके भक्तही हैं इनके समान तो भगवतीकी और कौन उपासना कर सकता है ? किन्तु और भी जो कोई उस महामायाकी उपासना करता है तो उसे भी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष समस्त पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। ऐसा एक भगवतीकी उपासना के अतिरिक्त संसारमें और कौनसा साधन है ? कि, जिससे भोग और मोक्ष दोनों एकही स्थान पर प्रगट होते हैं, किन्तु यह एक भगवतीही की भक्तिमें शक्ति है कि, उसका भक्त जगत्में अनेक प्रकारके विषयसुखके भोगोंको भी भोगता हुआ किसी योनिको नहीं प्राप्त होता है।

शिवकृत तन्त्ररीति यह गाई। भक्ति भगवतीकी सुख-
दाई ।। पंच मकार न तजिये कबहूं। जिनहि सनातन
सेवत सबहूं ।। कृष्णदेव बलदेव सुज्ञानी। प्रथमा पीयत
सदा ज्यूं पानी ।। और प्रधान पुरातन जेते। सेवत
सकल मकारहि तेते ।।

शिवके बनाये हुए तंत्र ग्रन्थोंमें तो भगवतीकी भक्ति करनेकी रीति बहुतही सुखदाई कही है कि मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पांच मकारोंको कभी न त्यागना चाहिये, क्योंकि, इन्हें सनातनसे सभी सेवन करते आये हैं और तो क्या ? किन्तु कृष्ण और बलदेव जी बहुतही ज्ञानवान् थे। वे तो इस प्रकारसे मद्य पीते थे कि, जैसे कोई पानी पीता है। इनके अतिरिक्त और भी पुरातन श्रेष्ठ पुरुष हुए हैं वे सब पंच मकारोंका सेवन करते थे।

तेहि सेवन कीजो विधि सारी। शिव निज मुख भाखी
उपकारी ।। शिवके वचन धरै जो मनमें। लहै सो भोग
मोक्ष इह तनमें। ग्रन्थ भागवत व्यास बनायो। उपपु-
राण काली समुझायो ।। भक्ति भगवतीकी इक गाई।
पूजाविधि सगरी समुझाई ।।

उन पांच मकारोंको सेवन करनेकी जो कुछ विधि है वह परम उपकारी शिवजीने स्वयं अपने मुखसे वर्णन की है शिवजीके वचनोंको जो कोई हृदयमें धारण करेगा वह भोग और मोक्ष दोनोंही एक साथ इस शरीरमें ही पावेगा। तैसेही देवी भागवत उपपुराण जो व्यासजीने बनाया है उसमें महाकालीके प्रभावको समझाकर एक भगवतीकी भक्ति करनी कही है और उसकी पूजाकी विधि सब समझाई।

ध्याता सकल भगवतीके हैं। हरि हर सूर्य गणेश
जिते हैं ।। सकल पिये प्रथमा मति वारे।
पूजत शक्ति मगन मन सारे ।। जगजननी जागे इक
देवी। परमानन्द लहैं तेहि सेवी ।। सूर्यभक्त भगवतीको
यश सुनि। क्रोध सहित बोल्यो इक मुनि पुनि ।।

विष्णु, शिव, सूर्य और गणपति ये जितने देवता हैं सब भगवती केही उपासक हैं ये सब बड़े २ बुद्धिमान् मद्य पीकर प्रसन्नमनसे शक्तिकी पूजा करते हैं। संसारमें एक जगज्जननी देवीही जागती रहती है और उसीकी सेवा करनेवाले परमानन्द पद पाते हैं। इस प्रकारसे भगवतीका यश सुनकर उनमेंसे फिर एक सूर्य्यका भक्त क्रोधसहित कहने लगा कि :—

सुन राजन्! बानी इक मोरी। भाषों झूठ न शपथ
करोरी ।। अतिपापिष्ठ नीच मत याको। श्रवण सनेह
सुन्यो तैं जाको। अवगुण जिते बखानत जगमें। ते
गिनियत गुणगण या भगमें ।। मद्य मलीनहि तीरथ
राखत। शुद्ध नाम आमिषको भाषत ।।

हे राजन्! आप एक मेरी बात सुनिये ? मैं झूठ नहीं कहता कोटयानकोटि सौगन्धें खाकर कहता हूँ कि, अभी आपने जिसकी बात सुनी है, इसका मत महापापिष्ठ ऐसा नीच

है कि संसारमें जितने अवगुण गिने जाते हैं, उन सब अवगुणोंके समूहकी गणना इसी खानीमेंसे है और महामलीन मदिराको तीर्थ, और मांसको शुद्ध नामसे पुकारते हैं ?

कहत और यूं सब बिपरीता। शंभुतन्त्र सेवी मति रीता।। दक्षिण सम्प्रदाय जो दूजी। यद्यपि श्रेष्ठ अनेकन पूजो।। तथापि बिन भानू सब अन्धे। इन सबके मन जिनमें बन्धे।। करत भानु सगरे उजियारो। ता बिन होत तुरत अँधियारो।।

इसीप्रकारसे शिवतन्त्र सेवन करनेवाले बुद्धिहीन सब मलीन पदार्थोंके विपरीत नाम धर २ के कहते हैं, यह तो वाम सम्प्रदायकी बात है, किन्तु इनमें एक दूसरी दक्षिण सम्प्रदाय भी है, यद्यपि अनेक श्रेष्ठ पुरुषोंने भी उसे ग्रहण किया है किन्तु, विना सूर्यकी उपासना उनका मन उसमें इस प्रकार लगा है जैसे अन्धेको लकडी पकडा दीजाती है क्योंकि सूर्यसे सब ठौरमें प्रकाश रहता है, सूर्यके विना तत्काल अन्धकार हो जाता है।

और प्रकाश जगतमें जे हैं। अंश सबै सूरजके ते हैं।। भानु समान कौन उपकारी। भ्रमत आप परहित मति धारी।। काल अधीन होत सब कारज। ताहि त्रिविध भाषत आचारज।। वर्तमान भावी अरु भूता। सूरज क्रिया करत यह सूता।

और जितने चन्द्र, तारागण, विद्युत, अग्नि आदिक प्रकाशक पदार्थ जगतमें हैं सब सूर्यहीके अंश हैं, सूर्यके समान और कौन उपकार करनेवाला होगा ? कि जो दूसरोंके हितकी बुद्धि धारण करके रात दिन चक्कर खाता फिरता है तथा संसारके सब कार्य जिस कालके अधीन हैं, जिसे आचार्य भूत, भविष्य, वर्तमान तीन प्रकारका कहते हैं वह काल सूर्यहीकी क्रियासे उत्पन्न हुआ है।

जामें लेश न तमको कबहीं। लखि जेहि जग जन जागत सबहीं।। कबहुँ न सोवे निशिदिन जागे। ध्यान करत ताकौ तम भागे।। औरहि जागत भाषत सगरे। राजन् जानु झूठ ये सगरे।। ऐसे पांच उपासक बोले। निज गुण अवगुण परके खोले।।

जिसमें किंचित्‌मात्र कभी अन्धकार नहीं होता है। तथा जिसके दर्शन होतेही समस्त विश्वके प्राणी जागृत होजाते हैं। ऐसा जो सूर्य्यदेव है वह कभी सोता नहीं है उसीका ध्यान करतेही अन्धकार दूर होता है और ये लोग जो और देवताओंकेजागते रहते बताते हैं, सो हे

राजन् ! इनको झूठे झगडा करनेवाले जानो । इस प्रकारसे विष्णु, शिव, गणपति, शक्ति और सूर्य पांचों देवताओंके उपासक अपने २ उपास्यके गुण और दूसरोंके उपास्यके दुर्गुण प्रकाशित करके लडते हैं इसकारण से कबीर साहिबने कहा है कि :—

निर्विवाद गुरु देव इक, सबको पूज्य समान।
और कहांतक नास्तिकहू, मानत इष्ट महान ।।

निर्विवाद देव तो एक गुरु ही हैं। कि, जो समस्त सम्प्रदाइयोंके एक समान पूजा करने योग्य हैं इन शैव वैष्णवादिकोंकी तो कहां तक कहें ? इनकी तो बातही क्या ? किन्तु बौद्ध चार्वाकादि जिनको लोग नास्तिक कहते हैं वे भी गुरुको ही परम इष्ट मानते हैं।,

गुरुसम समरथवान कहु, को जगमें है और।
हरि रूठे गुरु शरण हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर।।

गुरुके समान सामर्थ्यवान् दूसरा इस संसारमें और कौन है ? (अर्थात् कोई नहीं है) क्योंकि, परमात्माके रूठ जानेसे तो गुरुकी शरणमें जानेको एक जगह रहती है, किन्तु गुरुके रूठ जाने पर त्रिलोकमें रक्षा होनेकी कहीं आशाही नहीं रहती।

आये सतगुरुकी शरण, करन स्वतःकल्यान ।। राम
कृष्ण अवतार धरि, त्रिभुवनपति भगवान् ।।

औरकी तो क्या कहें ! किन्तु साक्षात परब्रह्म परमात्मा त्रिभुवनपति जो विष्णु भगवान् हैं वे भी तो अपना कल्याण करनेके लिये राम, कृष्णादिका अवतार धारण करके सतगुरुकी शरणमें आये हैं।

इस वचनको सुनकर, जिन्हें कुछ विचार करनेकी शक्ति नहीं है वे अवश्य कुछ भडक उठ होंगे कि यह क्या कहा ? गुरुभी तो लोग परमात्माकी प्राप्तिके लिये करते हैं। परमात्मासे भी कुछ गुरु श्रेष्ठ हैं ? इसके उत्तरमें आपने कहा है कि–

करता कुछ नहि करिसके, गुरु करें सो होय ।
तीन लोकमें और है, गुरुसे बडा न कोय ॥

कर्ता, जगतका रचनेवाला जो परमात्मा है वह कर्मानुसार फल देनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता है, किन्तु गुरु जो करना चाहते हैं सोई होता है इस कारण तीनों लोकमें गुरुसे बडा कोई नहीं है। इसकी हम आपको एक कथा सुनाते हैं जिसको सुनकर आप समझ जायेंगे कि, भगवान्से गुरुमें क्या विशेषता है।

महर्षि नारदजी भगवान्के परम भक्त थे, रातदिन वीना बजा २ कथा कीर्तन करते फिरना यही उनका काम था, एक दिन भ्रमण करते २ एक महाजनके घर पहुँचे। महाजन

---

१ शास्त्रका वचन है कि "हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।" अर्थात् परमात्मा रुष्ट हो जाय तो गुरुकी शरण जानेसे गुरु रक्षा कर सकते हैं, किन्तु गुरुके, रुष्ट होजानेसे त्रिलोकीमें कोई रक्षा करनेवाला नहीं है

ने साधु जानकर इनका बहुत कुछ आगत स्वागत किया और बड़े प्रेमपूर्वक आदर सत्कारके साथ इनको भोजन कराया। भोजन करके नारदजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हे महाजन ! तू बडा धर्मात्मा है यदि तुझे किसी बातकी इच्छा हो तो कह। महाजन हाथ जोडकर कहने लगा कि, महाराज ! भगवान्ने मुझे सब कुछ दिया है धन वैभव इत्यादि किसी बातकी कमी नहीं है, किन्तु मुझको कोई सन्तान नहीं है, यही केवल एक इच्छा सदा-काल मेरे मनमें बनी रहती है। नारदजीने कहा बहुत अच्छा ! मैं विष्णु भगवान्के पास जाकर तेरे लिये प्रार्थना करूँगा आशा है कि, उनकी कृपासे तेरे घर अवश्य ही सन्तान होगी। यह कहकर नारदजी वहांसे चल दिये।

और जाकर सीधे वैकुण्ठमें विष्णु भगवान्के पास पहुंचे, भगवान्ने बडे सन्मानपूर्वक बैठाया और पूछने लगे कि कहो नारदजी आप कैसे आये ? नारदजीने कहा महाराज ! आपका एक परम भक्त वैश्य जो बडा धर्मात्मा है उसके कोई सन्तान नहीं है मैं उसीके लिये आपसे प्रार्थना करने आया हूँ सो, आप उसपर अवश्य कृपा कीजिये। सुनके भग-वान् मुस्कराये और कहने लगे कि, नारदजी ! यह काम तो ब्रह्माका है मैं तो केवल पालन पोषण करनेवाला हूँ। अच्छा ! मैं ब्रह्माको बुलाकर पूछता हूँ देखूं वे क्या कहते हैं ? यह कर आपने एक दूतको संकेत किया कि, इतने ही में थोडी देरके पश्चात् ब्रह्माजी आ पहुँचे। भग-वान्ने उनसे कहा कि तुमने अमुक वैश्यको कितनी संतान दी हैं ? ब्रह्मा बोले एक भी नहीं दी है, क्योंकि उसके भाग्यमें सात जन्मतक सन्तान होना भी नहीं है। विष्णु भगवानने नारदसे कहा कि लो नारद ? अब मैं क्या करूं ? नियमके विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता है। यह सुनकर नारदजी बहुत उदास हुए और भगवान्को नमस्कार करके मृत्युलोकमें चले आये। फिर उस वैश्यके पास जाकर सारा हाल उसे कह सुनाया। वैश्य भी उदास होकर कहने लगा अच्छा कुछ चिंता नहीं, ब्रह्माके लेखको कौन मेट सकता है ? भगवान्ने मुझे सब कुछ दिया है, यदि केवल एक सन्तान नहीं है तो सही मैं तो फिर भी प्रसन्न हूं। सुनकर वहांसे नार-दजी अपने स्वभावानुसार किसी तरफ चले गये।

इस घटनासे कुछ थोडे दिनोंके पश्चात् कोई एक महात्मा सन्त भी कहींसे विचरतेहुए उसी महाजनके यहां आ पहुँचे महाजनने अपने स्वभावानुसार आदर सत्कार पूर्वक उनकाभी सन्मान किया। महात्माजी महाजनपर प्रसन्न होकर कहने लगे कि मांग क्या चाहता है ? महाजन सुनकर चुप रह गया, कुछ नहीं बोला। तब महात्माने फिर कहा अरे ! बोलता क्यों नहीं मैं तुझे सब कुछ देने को तैयार हूं। महाजन हाथ जोड कर कहने लगा महाराज ! एक बार नारदजी भी मुझसे इसी प्रकार कहा था किन्तु जब उन्होंने विष्णुलोकमें जाकर भगवान्से कहा तो उन्हें मालूम हुआ कि, मेरे भाग्यमें सन्तान नहीं है, इस कारण अब मैं किसीसे कुछ नहीं मांगता हूं। महात्मा पूरे सन्त थे कहने लगे, हम नारद सारदकी बात नहीं जानते। जा ! एक, दो, तीन, चार कहकर चल दिये। सद्गुरुकी कृपासे चार ही वर्षके भीतर उसके चार लडके उत्पन्न हुए, इसीसे कहा है कि परमात्मासे भी महात्मा श्रेष्ठ हैं क्योंकि परमात्मा तो कर्मका फल देनेवाला है महात्मा कर्मकी रेखापर मेख मारनेवाले हे इसीकारणसे धर्म्म-दासजी साहिबने कहा है, कि—

धन्य नर गुरु महिमा जो जाने। सो अतिनीच त्रिलोक
पूज्य हैं अस कबि कहत सयाने ।। टे० ।।
वेद पुराण सन्त गुरुके गुन, हरिसे अधिक बखाने।
नाम लेत अघपुञ्ज नाश होय, तीनों ताप सिराने ।।
हरि मायावश जीव भ्रमत हैं, मोह पास उरझाने। गुरुकी
कृपा छूटि बन्धनसे, पहुँचे मुक्ति ठिकाने ।। जानि
मनुष्य मूढ जो गुरु को, सेवत चरण विराने। ते नर
महा अधम हैं पामर, केवल कलिमल साने ।। भव-
सागर में भटकत भटकत, अजहुँ न पाँव पिराने ।।
धर्म्मदास विश्वास हीन जन, जमके हाथ विकाने ।।

धर्म्मदासजी कहते हैं कि वह मनुष्य धन्य है जो कोई गुरुकी महिमाको जानता है यद्यपि वह पुरुष नीच भी हो तो भी त्रिलोकीके पूजन करने योग्य है इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष कहते हैं। इस विषयकी हम तुमको एक कथा सुनाते हैं कि :-

जब महाभारतके युद्धमें कौरव अपनी सारी सेनासमेत मारेगये और श्रीकृष्ण भगवान्की सहायतासे पाण्डवोंकी विजय हुई तब धर्म्मराज युधिष्ठिर राजसिंहासनपर विराजमान होकर अपना राजकाज करने लगे। तो उन्हें एक दिन बड़ा भयानक स्वप्न आया। स्वप्नमें देखते हैं कि मेरे भाई जो कौरव महाभारतके युद्धमें मारे गये हैं, उन सबके विना शिरके धड हाथमें शस्त्र लिये मुझसे बदला लेनेको रणभूमिमें दौड रहे हैं। यह देखकर राजा युधिष्ठिर बड़े भयभीत होकर जाग उठे और उठते ही आप श्रीकृष्ण भगवानके पास गये और अपने स्वप्नका वृतान्त सुनाकर कहने लगे कि महाराज ! इस समय मेरा हृदय बहुत व्याकुल हो रहा है किसी प्रकार स्थिर नहीं होता। क्या किया जाय ? भगवान् ने उत्तर दिया कि —

हे युधिष्ठिर ! तुम लोगोंने अपने भाइयोंकी हत्या की है जिसका महापातक तुम्हें लगा है इस कारण पहले तो तुम सब तीर्थोंका जल मँगाकर उससे स्नान करो और फिर गोदान, कन्यादान, अन्नदान, सुवर्णदान इत्यादि सब दानोंको करके यज्ञ करावो जिसमें समस्त देश देशान्तरोंसे ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंको बुलाकर भोजन कराओ।

तुम्हारा यज्ञ सफल होगा तब सब पातक नष्ट होकर तुम्हारा हृदय स्वयं शांत हो जायगा। पांडवोंने भगवान्की आज्ञानुसार वेदोक्त रीति से स्नान दानादि समस्त क्रिया करके दूर २ देशके अनेक ऋषि, मुनि, आदि याज्ञिक ब्राह्मणोंको बुलाया और यज्ञ करानेका प्रबंध करने लगे, तब श्रीकृष्ण भगवान्ने एक घंटा बांधकर आकाशमें लटकवा दिया और कहा कि जब यह घण्टा आपसे आप सात बार बजे तब जानना कि यज्ञ पूर्ण हुआ।

पांडवोंने यथाविधि यज्ञ करके यज्ञमें आये हुए पच्चीसकोटि ब्राह्मण और अस्सी सहस्र

ऋषि, मुनि आचार्य और समस्त षट दर्शनके साधुओंको बड़े प्रेमसे भोजन कराया। जब दान दक्षिणा देनेपर घंटा नहीं बजा, तो पांडवोंको बड़ा सन्देह हुआ कि क्या बात है? घण्टा तो एक बार भी नहीं बजा, तब राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित श्रीकृष्ण भगवान्‌के पास गये और पूछने लगे कि महाराज ?हमने आपकी आज्ञानुसार स्नान, दानादि क्रिया करके यथा विधि यज्ञ कराया और ऋषि मुनि आचार्य, साधु, ब्राह्मण सबको भोजन कराया जिसमें स्वयं आपने भी भोजन किया किन्तु घण्टा न बजा, अब क्या करना चाहिये ? भगवान्‌ने कहा हे युधिष्ठिर ! जब तुम भोजन करा रहे थे तब मैं सबको अपनी ज्ञानदृष्टि द्वारा देख रहा था तो उनमें कोई तो वर्णाभिमानी कोई आश्रमाभिमानी, कोई विद्याभिमानी कोई तप अभिमानी इत्यादि अभिमानोंसे लदे हुए हाथी घोडा, ऊंट बैल आदि पशु रूपमें भोजन कर रहे थे किन्तु उनमें निरभिमानी गुरुभक्त मनुष्य एक भी नहीं था ! अतएव जबतक तुम्हारे यहां कोई निरभिमानी महात्मा सन्त आकर भोजन न करेंगे तबतक तुम्हारा यज्ञ पूर्ण होकर घण्टा बजाना दुःसाध्यही नहीं वरन् सर्वथा असंभव है। यह सुनकर धर्म्मराजने कहा कि हे महाराज हम दो समस्त देश देशान्तरोंसे बड़े २ ऋषि, मुनि, आचार्य, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी सन्त महात्माओंको बुलाकर भोजन करा चुके हैं किन्तु अब आपही बताइये ? कि वे सच्चे महात्मा कौन और कहां हैं ? कि, जिनको बुलाकर भोजन करानेसे यज्ञ पूर्ण होगा ? भगवान् ने कहा हे युधिष्ठिर ! सुदर्शन नामका श्वपच काशीमें रहता है वह गुरुका पूर्ण भक्त है, जब वह आकर तुम्हारे यहां भोजन करेगा तब यज्ञ पूर्ण होकर घण्टा बजेगा।

युधिष्ठिरने तत्काल भीमसेनसे कहा कि तुम काशीको जावो और वहां सुदर्शन नामका एक स्वपच भक्त रहता है उसे मानमर्यादापूर्वक प्रतिष्ठाके साथ बुला लाओ। भीमसेन युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार काशीको गये और ढूंढ़ढांढ़कर सुदर्शनके घर जा पहुँचे, बिनाही कुछ बन्दना प्रणाम किये खड़े होकर कहने लगे कि हे, सुदर्शनजी ! तुमको राजा युधिष्ठिरने यज्ञमें भोजन करनेको बुलाया है मेरे साथ चलो। यदि तुम्हारे भोजन करने से घण्टा बज जायगा तो राजा युधिष्ठिर तुम पर बहुत प्रसन्न होगा। यह सुनकर सुदर्शनजीने उत्तर दिया भाई ! मैं राजा युधिष्ठिरका नौकर नहीं हूँ।

राजा वेश्या जातिशिकारी। महा अकर्मी विषय-
विकारी।। इनके घर भोजन जो पावे। पुण्य क्षीण होय
नर्कहि जावे।। षोडश दोष सदा इन संगा। निकट
जात होवे मति भंगा।। ताते कहो तिन्हैं तुम जाई।
हम नहिं भोजन करेंगे भाई।।

राजा, वेश्या तथा जीवहिंसा करनेवाले धीमर वधिक आदि जातिके लोग जो महा पापकर्म करके विषयोंका सेवन करनेवाले हैं, इनके घर जो कोई भोजन करता है उसके पुण्य क्षीण होकर वह नरकमें जाता है और मद्य, मांस, चोरी, व्यभिचार, जुवा आदि षोढश् महान् दोष तो सदा उनके साथ ही रहते हैं, इस कारण इनके पास जाते ही बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, अत एवं तुम जाके उनसे कह दो कि भाई ! हम तो तुम्हारे यहां भोजन नहीं करेंगे।

इस प्रकारकी बात सुदर्शनकी सुनकर सहन कर लेनेकी शक्ति भीममें कहां थी ? ये सुनते ही महा क्रोधित होकर मनमें कहने लगे, भगवानने किस नीचके पास मुझे भेजा है। यदि एक गदा मार दूं तो पातालको चला जाय, पर क्या करूं भगवान्का और भाईका मुलाहिजा करना, पडता है। सुदर्शन जी तो अन्तर्यामी थे भीमसेनके हृदयकी बातको जान गये और अपनी सुमरनी उनके संमुख रखकर बोले—अच्छा ! यह मेरी सुमरनी लेकर तुम चलो मैं जरा घरके भीतर जाकर तुम्हारे पीछे आता हूँ। यह कहकर आप तो घरमें चले गये और भीमसेन उनकी सुमरनी उठाने लगे। बहुत कुछ बल लगाया पर सुमरनी तो उनसे किंचित् भी न उठ सकी, तब तो भीमसेन मनमें बडे लज्जित होकर उसी सुमरनीके पास खडे रह गये। इतनेमें सुदर्शनजी घरसे बाहर आकर कहने लगे कि हे भीमसेनजी। मैंने तो आपसे कहा था कि आप यह सुमरनी लेकर चलो, पर क्या कारण है कि आप यही खडे हैं ? सुनकर भीमने कहा कि, मुझसे तो यह सुमरनी नहीं उठती है। तब सुदर्शनजीने कहा कि, जब आपसे यह सुमरनी ही न उठ सकी तो फिर गदा मारकर मुझे पातालमें कैसे आप भेज सकते थे ? यह सुनकर भीमसेन क्रोधसे झुंझलाते हुए लौट आये और युधिष्ठिरको सब वृत्तान्त सुनाकर कहने लगे कि, महाराज ! सुदर्शन तो बडा अभिमानी है, कहता है कि मैं राजा और वेश्याके घर भोजन नहीं करता हूँ, मैं तो आपका तथा श्रीकृष्ण भगवान्का भय मानकर चला आया नहीं तो बिना मारे न छोडता।

यह सुनकर युधिष्ठिर भीमसेनको साथ लेकर भगवान्के पास आये और सुदर्शनजीका वृत्तान्त सुनकर कहने लगे कि क्या इतने ऋषि, मुनि, महात्माओंसे भी वह महाशूद्र श्रेष्ठ है ? सुनकर भगवान् कृष्णचन्द्रजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! तुम सुदर्शनजीकी महिमाको नहीं जानते, किन्तु मैं भली प्रकारसे जानता हूँ कि, जबतक तुम उन्हें बुलाकर भोजन न कराओगे तबतक तुम्हारा यज्ञ कदापि पूर्ण न होगा। अतएव तुम स्वयं जाओ और बहुत कुछ विनय भावसे संमान पूर्वक उन्हें बुला लाओ, जब वे आकर तुम्हारे यहां भोजन करेंगे तब तुम्हें मालूम होगा कि, उन अनन्त ऋषि, मुनियोंसे इसमें क्या श्रेष्ठता है ?

भगवान्की आज्ञानुसार स्वयं राजा युधिष्ठिर सुदर्शनजीको बुलानेके लिये काशीजीको गये और बडे नम्रतासे उन्हें प्रणाम करके निवेदन किया कि, हे भक्तजी ! आप कृपाकरके मेरे साथ चलिये भगवान्नेभी आपको बुलाया है, बिना आपके चले मेरा यज्ञ पूर्ण न होगा। सन्त तो दयालु होते ही हैं, युधिष्ठिरके मुखसे इस प्रकार नम्रता से भरे हुए गिडगिडाहटके शब्द सुनकर उनका हृदय पिघल गया तत्काल उठकर युधिष्ठिरके आगे हो गये और कहने लगे चलिये। सुदर्शनजीको लेकर महलोंमें पहुँचते ही युधिष्ठिरने महारानी द्रौपदीको बुला कर रसोई बनाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही द्रौपदीने तत्काल भोजन बनानेका प्रबन्ध किया और थोडेही समयमें भांति भांति की चटनी अचारसे लेकर मोदक, फीनी, मधुर पक्वान्न पर्यंत छप्पन प्रकारके व्ययंजन बनाकर उपस्थित कर दिये और बडे प्रेम सहित सुदर्शनजीके चरण धोकर पाटपर बैठाया, तिसके अनन्तर अनेक कठोरा कटोरियों सहित सुवर्णका थाल परोसकर उनके सम्मुख ला धरा तथा महारानी द्रौपदीजी स्वयं हाथमें पंखा लेकर पासमें

आ खडी हुई। सुदर्शनजी तो सांसारिक पदार्थोंके स्वादसे सम्यक् विरक्त थे ही, खट्टे, मीठे, चरपरे आदि अनेक प्रकारके व्यंजनोंको एक ही में मिला दिया और सद्गुरुको अर्पण करके भोजन करने लगे। देखकर द्रौपदीको घृणा आई। मनमें कहने लगी कि, मैंने कैसे प्रेम से सब पदार्थोंको बनाया था जिनको इसने एकमें मिला डाला आखिरको नीच ही तो ठहरा ऐसे भोजन इसे देखनेको कहां मिले होंगे? कि, जो वह इनके स्वादको जाने।

अभी तीन ही ग्रास आपने भोजन किये थे कि द्रौपदीके मनकी बात आपको जान पड़ी। तत्काल हाथ धोकर उठ खड़े हुए और वहांसे चल दिये। युधिष्ठिरने देखा कि सुदर्शनजी तो जाते हैं और घण्टा अभी सात बार नहीं बजा, तीन ही बार बजकर रह गया यह क्या बात है? तब भगवान्से जाकर कहने लगे कि महाराज! सुदर्शनजीके भोजन करने पर भी आकाशघण्टा सात बार नहीं बजा, तीन ही बार बजकर रह गया, अब क्या करें! भगवानने उत्तर दिया कि हे युधिष्ठिर! रानी द्रौपदीके मनमें सुदर्शनजीको भोजन करते देखकर ग्लानि आई है कि, यह नीच भोजन करना क्या जाने? मैंने जो अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न परम स्वादिष्ट भोजन बनाये थे तिनको एकमें मिलाकर इसने सब स्वाद बिगाड दिया इस कारण सुदर्शनजी उसके अन्तःकरणकी बात को जानकर भोजन छोडकर चले गये, अब तुम दौडकर जाओ और उनके चरणोंपर गिरकर अपना अपराध क्षमा कराके फिरसे भोजन कराओ तब तुम्हारा यज्ञ पूर्ण होगा। सुनते ही राजा युधिष्ठिर दौडे गये और सुदर्शनजीके चरणोंपर गिरकर कहने लगे कि महाराज! हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम लोग महा अज्ञानी अन्धे हैं। आपके भेदको नहीं जानते, हमारी अज्ञानता पर न जाइये चलकर हमारे यहां भोजन कीजिये। रजाकी नम्रता देखकर आपको फिर दया आगई कहने लगे हे युधिष्ठिर! उस भोजनको तो द्रौपदीने अपवित्र कर दिया है, इस कारण उसका भोग सद्गुरुको नहीं लग सकता है, अब तो फिरसे चौका लगवाकर पवित्रतासे भोजन बनवाओ तो गुरुदेवको भोग लगेगा। युधिष्ठिरने फिर तत्काल द्रौपदीको बुलाकर आज्ञा दी कि, चौका लगवाकर फिरसे भोजन तयार करो पर सावधान रहना कि, अबकी बार किसी प्रकारकी भिन्नता तथा ग्लानि मनमें न आने पावे। युधिष्ठिरकी आज्ञांनुसार द्रौपदीने फिर वही पवित्रतापूर्वक भोजन बनाया और दीनता सहित प्रेमभावसे सुदर्शनजीको भोजन कराया—

श्वपच भक्त भोजन कियो, बज्यो घण्टा झनकार।
ऋषी मुनी साधू करैं, चहुँ दिशि जैजैकार।।

अर्थ—श्वपच भक्तके भोजन करतेही जब आकाशघण्टा सात बार झनकार करके बजा तब चारों तरफसे ऋषि, मुनि, सिद्ध, महात्मा जैजैकार करने लगे, इसीसे कहा है, कि नीचसे नीच भी गुरुका सच्चा भक्त त्रिलोकके पूजन करने योग्य है, क्योंकि—

वेद पुराण सन्त[१] गुरुके गुण, हरिसे अधिक बखाने।
नाम लेत अघपुञ्ज नाश होय, तीनों ताप सिराने।।

वेदोंसे लेकर पुराण पर्यन्त, सन्त गुरुके गुण परमात्मासे भी श्रेष्ठ वर्णन करतेहैं कि जिसका स्मरण करते ही महान् पापोंके ढ़ेर नाश होकर आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक जो तीन प्रकार के ताप हैं सो शीतल हो जाते हैं –

हरि[२]मायावश जीव भ्रमत है, मोह पास उरझाने।
गुरुकी कृपा छूटि बन्धनसे पहुँचै मुक्ति ठिकाने।।

परमात्माकी मायाके वशमें पड़कर तो जीव मोहपाशमें उलझा हुआ जन्म मरणके चक्रमें भ्रमता फिरता है कभी छूट नहीं सकता जिसके लिये भगवानने स्वयं गीतामें कहा है कि, मेरी मायासे छूटना कठिन है किन्तु गुरुकी कृपासे तो उस मायाके बन्धनसे छूटकर मोक्षस्थानमें पहुँच जाता है।

जानि मनुष्य जो मूढ़ गुरुको, सेवत चरण बिराने।
ते नर महा अधम शठ पामर, केवल कलिमल साने।।

अतएव जो कोई मूर्ख गुरुको मनुष्य जानकर उनकी तो पूजा नहीं करता किन्तु अन्य किसी देवी देवताओंको पूजता फिरता है वह परम पातकी केवल पापोंसे पूर्ण महानीच है।

भवसागरमें भटकत भटकत, अजहुँ न पाँव पिराने।
धर्म्मदास विश्वास हीन जन, जमके हाथ बिकाने।।

धर्म्मदासजी कहते हैं कि, हे भाई। अनादिकालसे तुम उस माया के फन्देमें पडे हुए संसारसागरमें भटकते फिरते हो क्या अब तक भी तुम्हारे पांव नहीं दुखे जिसके हृदयमें श्रद्धा भक्ति नहीं है वे तो यमराजके हाथ बिके हुए हैं।

यह तन विषकी बेलरी, गुरु अमृतकी खान।
शीश दियेहू जो मिले, तो भी सस्ते जान।।

यह शरीर तो एक ऐसी विषकी बेल है कि जिसमें शब्दादिविषयरूपी विष तथा काम क्रोधादि महान् विषारी फल फूल उत्पन्न हुआ करते हैं जिनका उपयोग करनेसेएक ऐसी महान्

---

१ भक्ताग्रगण्य महात्मा नारदजीने भक्तिसूत्रमें कहा है "मुख्यतस्तु महत्कृपैव भगवत्कृपालेशाद्वा" अर्थात् मुख्यतः तो महात्माकी कृपा है भगवान्की कृपा तो विकल्पसे न्यून है। गुरुगीतामें महादेवजीने भी कहा है "न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्" अर्थात् गुरुसे कोई अधिक नहीं गुरुसे कोई अधिक नहीं।

२ "दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया।" अर्थात् इस त्रिगुणात्मिका मायासे अलग होना बड़ी कठिन बात है।

दु:साध्य व्याधि "विषयाशक्ति उत्पन्न होती है कि जो केवल प्राणान्तपर्यन्त ही नहीं वरन् पुनर्जन्म जन्मान्तर तक भी नाना प्रकारके उपद्रव सहित उपदंशादि रोगोंके समान कष्ट देनेसे पीछा नहीं छोड़ती है। उस विषको निवृत्ति करनेवाले अमृतकी खानि एक सद्‌गुरु ही हैं ऐसे जो गुरु हैं वे यदि अपना मस्तक अर्पण करनेसे जो भी मिलजाय, तो भी जानना चाहिये कि बहुत सस्ते मिल गये।

गुरु मिला तब जानिये, मिटैं शोक सन्ताप।
दिव्यदृष्टि उर प्रकट होय, दर्शे मालिक आप।।

सच्चे गुरुका अपनेको मिलना उस समय जानना चाहिये कि जब समस्त आधि व्याधिरूपी शोक सन्ताप नष्ट होजाय और अन्तःकरण में दिव्यदृष्टि प्रगट होकर सदा स्वयं मालिकके दर्शन हुआ करे। क्योंकि सच्चा गुरु मिलनेपर भी यदि शिष्यका हृदय उनसे नहीं मिले तब लाभ होना असम्भव है। और यदि शिष्यका पूर्ण विश्वास गुरुपर होगया तब तो कहना ही क्या है?

गुरु समर्थ जेहि शिर खड़े, काह कभी तेहि दास।
ऋषि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छोड़े पास।।

जिसके मस्तक पर महान् सामर्थ्यवान् सद्‌गुरु खड़े हैं उस गुरुके दासको संसारमें किस बातकी कमी है, अष्ट प्रकारकी सिद्धियें और नव निद्धियें तो सदा उसकी सेवा करती हैं तथा मुक्ति तकभी उसके समीपसे दूर नहीं जाती हैं।

गुरुकी महिमा कहि सकें, कहँ ऐसी मति मोर।
विनय सहित बन्दन करों, चरणकमलकर जोर।।

गुरुदेवकी कुछ महिमाको वर्णन करसकें, ऐसी मेरी बुद्धि कहां है? अतएव मैं तो केवल विनयभाव सहित उनके चरणकमलोंमें वन्दना ही मात्र करता हूँ।

अभय दान मोहिं दीजिये, गुरु देवनके देव।
और नहीं कुछ चाहिये, निशिदिन तेरी सेव।।

हे देवोंके देव! मुझको तो आप कृपा करके केवल एक अभयदान प्रदान कीजिये जिसमें कि संसारमें मुझको किसी प्रकारका कदापि भय प्राप्त न होवे तथा रात्रि दिवस आपकी चरणसेवा किया करूं इसके अतिरिक्त और मुझको कुछ नहीं चाहिये।

गढि प्रतिमा निज हाथसे करें तासुकी सेव।
देह देहरा मांहि तजि, सत गुरु चेतन देव।।

लोग अपने हाथसे जो मूर्ति गढ़कर बनाते हैं उसकी तो पूजा करते हैं किन्तु, जिसके शरीररूपी मन्दिरमे चेतन देव निवास करता है ऐसे जो सतगुरु हैं तिनकी पूजा नहीं करते हैं।

हरि हर आदिक जगतमें, पूज्यदेव जो कोय।
सतगुरुकी पूजा किये, सबकी पूजा होय।।

विष्णु शंकर इत्यादि संसारमें जितने पूजन करने योग्य देवता हैं, सद्‌गुरुकीपूजा करनेसे सबकी स्वयं पूजा होजाती है क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि गुरुही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गु[१]रु ही महादेव है और कहां तक कहें साक्षात् परब्रह्म परमात्माभी तो गुरु ही है फिर एक गुरुकी पूजा करनेसे सब देवताओंकी पूजा क्यों नहीं हो जाती है ? सबकी हो जाती है।

डार पात जल डारिके, देवै वृथा बहाय।
जो गहि सींचै मूलको, तौ फल खाय अघाय।।

जो लोग वृक्षकी डाली पत्तोंपर पानी डालते फिरते हैं वे वृथा ही उस पानीको बिना उपयोग बहारहे हैं, किन्तु, जो कोई उस झाडकी जडमें पानीको सींचता है वह अवश्य उसके फलोंको खाकर तृप्त होता है।

उर लखाय परमातमा, कियो बहुत उपकार।
ऐसे गुरु तजि औरको, पूजै ता मुख छार।।

जिन सद्‌गुरुने अपने हृदयमें ही परमात्माका परिचय (जान पहिचान) कराकर बडा भारी उपकार अपने ऊपर किया है, उन सतगुरुको त्यागकर जो कोई अन्य देवी देवता भैरव भुइयां आदि जो पूजते फिरता है उसके मुखमें धूल है, अर्थात् उसे किसी प्रकारकी सफलता कभी प्राप्त न होगी, केवल धूल ही फांकता फिरेगा।

अब संसारमें गुरु तो बहुतसे हैं एक मुट्ठी आटेके लिये भी गली २ में मारे २ फिरते हैं, उनमेंसे कौन गुरु पूजने योग्य हैं ? और कौन नहीं पूजने योग्य हैं सो आप कहते हैं।

जा घट आतमज्ञान नहिं, सो घट जान मसान।
ज्यौं लोहारकी धौंकनी, श्वास लेत बिन प्रान।।

जिसके हृदयमें आत्मज्ञान नहीं, उसके शरीरको श्मशान अर्थात् मृतकके समान जानना चाहिये, और यदि यह शंका हो कि, फिर वह बातचीत कैसे करता है ? तो जैसे विना प्राणके लोहारकी धौंकनी श्वास लेती है तैसे ही इसका भी बातचीत करना है।

आतम सब घट एक सम, श्वान काकमें जान।
पर नहिं पूजनयोग्य वे, बिन स्वरूपके ज्ञान।।

आत्मा तो ब्रह्मासे लेकर कुत्ता, बिल्ली, काग इत्यादि पशु पक्षी चींटी पर्यंत सबम एक ही समान विद्यमान है, इस कारण सुख दुःखका अनुभव तो प्राणिमात्रको एक ही समान होता है, किन्तु, जिन्हें अपने स्वरूपका ज्ञान अर्थात आत्मज्ञान नहीं है वह पूजन करने योग्य भी नहीं है।

---

१ गुरुगीतामें कहा है "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः। अर्थात् गुरुही ब्रह्मा, गुरुही विष्णु, गुरु ही शिव और गुरु ही परब्रह्म परमात्मा है अतएव गुरुको नमस्कार है।

लिये मूढकी औषधि, बाढै दूना रोग।
तैसे अज्ञानी गुरु, है नहिं पूजनयोग।।

जैसे मूर्ख वैद्यकी औषधी लेनेसे रोग निवृत्त होनेके बदलेमें दूना होता है क्योंकि वह तो यह जानता नहीं है कि यह रोग क्या है ? और इसपर क्या दवा देनी चाहिये किन्तु अपने स्वार्थके लिये कुछ अट्टसट्ट करता है इस कारणसे रोग बढता जाता है। तैसे ही जिनको आत्मज्ञान नहीं है वह गुरु किसी प्रकार कल्याण नहीं कर सकता है, इस कारण वह पूजन करने योग्य नहीं है।

जगमें गुरु सस्ते भये, कौडी माहि पचास।
ब्रह्मज्ञान बेचत फिरे, करि मन धनकी आस।

संसारमें गुरु बहुत सस्ते होगये हैं यहां तक कि एक कौडीमें पचासों गुरु मिल सकते हैं, किन्तु नहीं भाई ? कौडीकी भी कुछ आवश्यकता नहीं है, वे तो केवल "हमको कोई कुछ देयगा" इतनी एक मनमें धन मिलनेकी आशा ही मात्रसे बडे लंबे बडे चौडे व्याख्यान दे २ कर गली २ में ब्रह्मज्ञान बेचते फिरते हैं।

शिष्य कृपण गुरु स्वारथी, मिले योग यह आय।
कीच कीचके दागको, कैसे सकै छुडाय।।

शिष्य तो ऐसा कृपण हो कि यदि चमडी भी जाय तो भी दमडी न देसके और गुरु ऐसे हों कि केवल मायाके लोभी परम स्वार्थी। जहां इस प्रकारका परम विचित्र योग आ मिले वहां कहो ? कीचड़से कीचड़के दागको कोई कैसे छुड़ा सकता है ? अर्थात् रोगीको रोगी कैसे आरोग्य कर सकता है। इस कारण —

गुरुसे सुनि उपदेश उर, करिये तासु विचार।
झूठे गुरुके पक्षको, तजत न कीजे बार।।

गुरुके मुखसे उपदेशको सुनकर उसको हृदयमें मनको स्थिर करके अच्छी तरह विचार करना चाहिये कि यह उपदेश सत्य है कि, मिथ्या है ? यदि सत्य हो तो तत्काल उसे दृढ़ता-पूर्वक धारण कर लेना चाहिये, और मिथ्या हो तो उस झूठे गुरुके पक्षको त्याग करनेमें किंचित भी विलम्ब न करना चाहिये।

मणिमय प्रतिमा गढि धरी, शिल्पी आनि नवीन।
मूढहु तेहि पूजत नहीं, जानि प्रतिष्ठाहीन।।

हीरेकी मूर्ति सिलावटने नई गढ़के ला धरी है किन्तु जहांतक प्राणप्रतिष्ठा नहीं की गई है, तहांतक उसकी पूजा मूर्ख भी नहीं करता है। तैसे ही जिस गुरुमें आत्मज्ञानरूपी प्राण नहीं हैं वह भी मृतकके समान पूजन करने योग्य नहीं है।

रसभोगी योगी भयो, निर्मल वेष बनाय।
ज्यों बक मछरी खानको, बैठ्यो ध्यान लगाय।।

नानाप्रकारके विषयोंका भोग करनेके लिये जो परम उज्ज्वल साधुका वेष बनाकर बैठा है वह इस प्रकारका है कि जैसे मछली खानके लिये बगला ध्यान लगाकर बैठा रहता है ।

वेष देखि नहिं भूलिये, बूझि लीजिये ज्ञान ।
बिन कसौटी होत नहिं, कंचनकी पहिचान ।।

ऊपरसे केवल वेषमात्रहीको देखकर यह न समझलेना चाहिये कि ये कोई बडे महात्मा सन्त हैं किन्तु कुछ प्रश्न करके भी जान लेना चाहिये कि इन्हें कुछ आत्मज्ञान हुआ है कि नहीं ? क्योंकि बिना कसौटी पर घर्षण किये खोटे सुवर्णकी यथार्थ पहिचान नहीं हो सकती है !

कांचमणी पारख बिना, एकहि रूप दिखाय ।
कौडी सांटे कांच मणि, महँगे मोल बिकाय ।।

कांच और हीरा परीक्षा किये विना; दोनों एक ही प्रकार दिखाई देता है किन्तु कांच तो कौडियों के मोल मिलती है और हीरा बहुत महँगे मोलसे लाखों रुपयोंमें बिकता है ।

आतम ज्ञान उदय हृदय, भयो नहीं लवलेश ।
निष्कारण धारण किये, फिरै साधुका वेष ।।

जिसके अन्तःकरणमें आत्मज्ञानके प्रकाशका उदय कुछ थोडासा भी नहीं हुआ हो वह विना प्रयोजन व्यर्थ ही साधुका वेष धारण किये फिरता है ।

वक्ता ज्ञानी जगतमें, पंडित कवी अनन्त ।
सत्य पदार्थ पारखी, बिरला कोई सन्त ।।

लंबी चौडी बातें बनाकर व्याख्यान देनेवाले ब्रह्मज्ञानी तथा वेद शास्त्र पुराणोंको पढ़कर सुनानेवाले विद्वान् और गद्यपद्यात्मक ग्रन्थ रचनेवाले कवि तो संसारमें बहुतसे अनगिनती हैं, किन्तु सत्य पदार्थ जो परमात्मत्त्व है जिसकी परीक्षा करनेवाले कोई लाखोंमें एक विरला ही सन्त है । वे किस प्रकारके होते हैं ? सो कहते हैं –

मान बडाईकी करे, मुखसे कबहुँ न बात ।
अष्ट सिद्धि नव निद्धिको, साधू मारत लात ।।

हम बड़े ज्ञानी हैं, हम बड़े विद्वान् हैं, हम बड़े महात्मा हैं इत्यादि मान बड़ाईकी बात सच्चे महात्माकभी अपने मुखसे नहीं करते हैं, तथा अणि[1]मादि अष्ट सिद्धि और महा[2]-पद्मादिनव निधियोंको दो पांवसे ठोकर मारते हैं ।

---

१ अणिमा महिमा चैव गरिमा लधिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वंचाष्ट सिद्धयः ।। अर्थ–अणिमा १, महिमा २, गरिमा ३, लधिमा ४, प्राप्ति ५, प्राकाम्य, ६, ईशित्व ७, वशित्व, ८ ये आठ प्रकारकी सिद्धियें हैं।

२ "महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपो । मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्ब्बश्च निधयो नव ।।

अर्थ–महापद्म १, पद्म २, शंख ३, मकर ४, कच्छप ५, मुकुन्द ६, कुन्द ७, नील ८ खर्व्व ९ ये नव निधियें हैं।

सन्त शिरोमणि है सोई, सारासार विचार।
करि माया परपंचको, देवे ठोकर मार।।

जो कोई सत्य और असत्य पदार्थका विचार करके मायाका प्रपंच जो ऋद्धि, सिद्धि, राजपट, धन, ऐश्वर्यादि हैं तिनको ठोकर मार अर्थात् त्याग करके विराग धारण करता है वेही परम शिरोमणि महात्मा सन्त हैं।

जेहि सुखको सन्तन तज्यो, जग तामें लपटाय।
वमन करीहू वस्तुको, श्वान स्वादसे खाय।।

जिस राज्यपाट, स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य्यादि सुखोंको महात्मा पुरुषोंने त्याग कर दिया है उसमें जगतके लोग दिनरात किस प्रकार लिपटे रहते हैं कि, जैसे वमन किये हुए पदार्थको श्वान बडे स्वादसे खानेमें लिपटा रहता है।

सन्त सदा संसारमें, सोवत करें सचेत।
निज स्वारथको त्यागिके, परमारथके हेत।।

महात्मा सन्त मानप्रतिष्ठा द्रव्यादिक प्राप्त होनेके स्वार्थको त्यागकर संसारमें केवल परमार्थके लिये अज्ञाननिद्रामें सोये हुए मनुष्योंको जगाया करते हैं जैसे कि –

क्या सोया बेचेत मुसाफिर, क्या सोया बेचेत।
इस न गरीमें चोर वसतहैं सर्वस धन हरिलेत।।टे०।।
मोहनिशा अज्ञान अँधेरो, चहुँदिशछायो आय।
तामें स्वपनो देखि अनोखा, मूरख रह्यो लोभाय।।
काल खडा शिरपर तेरे, तुझे न तनक विचार।
ना जानै करलेय कब? तेरा पकड अहार।।
पाँव पसारे तू परचो, उदय भयो है भोर।
जागि देखु सब चल दिये हैं, तेरे साथी और।।
चेत सबेरे बावरे, फिर पाछे पछिताय।
तुझको जाना दूर है, कहें कबीर जगाय।।
क्या सोया बेचेत मुसाफिर, क्या सोया बेचेत।
इस नगरीमें चोर वसत हैं, सर्वस धन हरिलेत।। टे० ।।

जो थोडे काल-की जगहमें रहकर चला जाता है उसे मुसाफिर कहते हैं, सो महात्मा उपदेश करते हैं कि हे भाई मुसाफिर! तू सोया क्या है? सचेत हो अर्थात् सावधान हो जा इस शरीररूपी नगरीमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक चोर रहा करते हैं सो वे आत्मज्ञानरूपी जो सर्वस धन है उसे हरण करलेते हैं।

मोहनिशा अज्ञान अँधेरा, चहुँदिश छायो आय ।
तामें स्वपना देखि अनोखा, मूरख रह्यो लुभाय ।।

मोहरूपी रात्रीमें अज्ञानरूपी अन्धकार चारों तरफ आकर छाया हुआ है जिसके बीचमें जो अद्भुत यह स्वपना जगतका प्रपंच तुझे दीख रहा है, तिसे देखकर तू लुभा गया है ।

काल खडा शिरपर तेरे, तुझे न तनक विचार ।
नाजाने करलेय कब, तेरा पकड अहार ।।

काल तेरे माथेपर खडा हुआ है न जाने वह किस समय तुझे पडकर खा जायगा, किन्तु, तुझे इस बातका कुछ विचार नहीं है ।

पाँव पसारे तू परचो, उदय भयो है भोर ।
जागि देखि सब चल दिये, तेरे साथी और ।।

तू तो पांव फैलाये हुए सोता है और प्रभात उदय हो रहा है अर्थात् तू जो यह जगतका प्रपंचरूपी स्वप्न देख रहा है सो सब नाश होनेवाला है । तू सावचेत होकर देख ले कि, तेरी बराबरीके साथी सब चले गये हैं ।

चेत सबेरे बावरे, फिर पाछे पछताय ।
तुझको जाना दूर है, कहैं कबीर जगाय ।।

इस कारणसे हे भाई ! कबीर साहेब तुझे जगाकर कहते हैं कि, जलदी सावचेत होना, नहीं तो फिर पीछे पछतायगा, क्योंकि तुझे बहुत दूर जाता है ।

इस प्रकारका उपदेश करना यही विद्वानोंका काम है और इसके अतिरिक्त जो कोई नाटक चाटक आदि सिद्ध दिखाते हैं उनके लिये कहा है कि–

खेल दिखावे जगतको, जो कोई सिद्धी पाय ।
हाय ! लजावे सन्तका, क्यों वह वेष बनाय ।।

जो कोई किसी प्रकारकी कुछ अणिमादिसिद्धियोंको पाकरके जगतके लोगोंको अपनी मान प्रतिष्ठाके लिये खेल दिखाता है तो यह ! बडे खेदकी बात है कि वह साधुका वेष बना कर, उस वेषको क्यों लज्जित करता है ।

सन्तोंकी सिद्धी यही, काटें कर्म कलेश ।
अति हित मीठे वचन कहि, देंय सत्य उपदेश ।।

सन्तोंकी तो सबसे बड़ी सिद्धि यही है कि, अनेक प्रकारके पाप कर्मोंके प्रभावसे हृदयमें क्रोधादि महान् लेश उत्पन्न हुआ करते हैं तिन्हें अत्यन्त मीठे बचनोंसे लाभदायक सत्य उपदेश देखकर निवृत्त कर दें ।

नहिं चन्दन नहिं चन्द्रमा, नहिं फूलोंकी माल ।
हैं प्रिय अस जस सन्तके, शीतल वचन रसाल ।।

संसारमें जैसे शीतल और परम प्रिय महात्मा पुरुषोंके अमृतरूपी बचन हैं तैसा शीतल न तो चन्दन है और न चन्द्रमा है और न फूलोंकी माला है।

सन्तनके उपदेश सुनि, करु कुछ हृदय विचार।
मनुषदेह संसारमें, मिले न बारम्बार।।

हे भाई! सन्तोंके उपदेशको सुनकर तुमभी कुछ अपने हित अनहितका विचार हृदयमें करलो, क्योंकि यह मनुष्यदेह इस संसारमें फिर बार-बार नहीं मिल सकता है।

युग अनन्तसे सहत दुख, करि नहिं सक्यो उपाय।
अब यह अवसर पायके, वृथा न देहु गवाँय।।

अनादि कालसे अबतक अनेक प्रकारकी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि योनियोंमें पडकर नाना प्रकारके दुःख भोगता रहा, किन्तु, उन दुखोंसे छूटनेका कोई उपाय नहीं करसका था परन्तु अब यह जो मनुष्य देह मिला है इससे समस्त प्रकारके दुःख सर्वथा निर्मूल होसकते हैं, अतएव इस अवसरको अब वृथा न खोदेना चाहिये, नहीं तो वैसेही होगा, जैसे कि–

किसी एक बडे भारी नगरमें एक अन्धा रहा करता था, उसे वहां अनेक प्रकारके दुःखोंसे बडा कष्ट होने लगा तब उसने किसी एक दूसरे मनुष्य से पूछा कि हे भाई! मैं इस नगरसे बाहर जाना चाहता हूं अतएव इससे निकलनेका मार्ग कहां है सो तू मुझे बतादे उसने उत्तर दिया कि इस नगरके चारों तरफ एक बड़ा ऊँचा कोट है, जिसमें केवल एकही द्वार है, उस द्वारके अतिरिक्त इस नगरसे निकलनेका दूसरा कोई मार्ग नहीं है; इस कारण तू उस कोटकी दीवारको पकडकर टटोलता चला जा जब दरवाजा आ जाय तो उसमेंसे निकलकर बाहर चले जाना।

इस बातको सुनकर उस अन्धेने कोटकी दीवारको पकडकर चलना आरम्भ कर दिया। चलते चलते जब द्वार आया तब उसमें अन्धेके शिर दाद थी उसमें खुजाल चलने लगी अन्धेने सोचा अभी द्वार दूर होगा दाद खुजालूं, दीवारको छोडकर दादा खुजलाने लगा और चलना जारी रहा इतनेमें द्वार निकल गया, जब दादमें आग उठी तब अन्धेने खुजलाना बन्द करके फिर हाथ लंबा किया तो कोटकी दीवार हाथ आगई बिचारा कोटको पडकर फिर चक्कर खानेलगा नगर बहुत बड़े घेरमें था, चलते २ अन्धेको कहीं पत्थरोंमें ठोकर लगती थी, कहीं कांटे छिद जाते थे, कहीं खड्डेमें गिरता था, इत्यादि अनेक प्रकारके दुःखोंको सहता हुआ जब वह बिचारा अन्धा द्वारपर पहुँचता तो उसके दादमें खुजाल चलने लगती। इस कारणसे वह दाद खुजाने लगता और नगरसे निकलनेका द्वार हाथसे जाता रहता, बस इसी प्रकारसे वह बिचारा अन्धा फिर २ कर चक्कर खाता रहा, किन्तु उस दुःखदाई नगरसे निकलनेका अवसर उसके हाथ न आया।

यह तो एक दृष्टान्त है, किन्तु इसका वास्तव सिद्धान्त यह है कि, बडाभारी नगर तो यह संसार है इसमें रहनेवाला अन्धा बिचारा अज्ञानी जीव है, वह जब आधि व्याधि, जन्म मरणादि अनेक प्रकारके दुःखोंसे पीडित होने लगा तब उसने किसी महात्माके पास जाकर

पूछा कि इस दुःखसे छूटनेका कोई मार्ग हो तो बताओ महात्माने उत्तर दिया कि, इस संसारके चारो तरफ चौरासी लक्ष योनियोंकी दीवार है उसमेंसे निकलनेका केवल एक मनुष्यदेहरूपी द्वार है क्योंकि केवल इस एक मनुष्यदेहसेही जीव सद्गुरुकी शरणमें जाकर उनके उपदेश आत्मज्ञानको प्राप्त कर सकता है, तब वह अनेक प्रकारके दुःखोंसे छूटकर अखण्ड सुखको पाता है; किन्तु ज्ञानरूपी नेत्रोंसे हीन होनेके कारण जब यह मनुष्यदेहरूपी द्वार प्राप्त होता है तब यह विषयरूपी दादको खुजाने लगता है अर्थात् शब्द, स्पर्शादि अनेक प्रकारके विषयोंके भोगमें पडकर इस मनुष्यदेहरूपी चौरासी लक्ष योनियोंसे, निकलनेके द्वारको व्यर्थ हाथसे खो देता है और फिर पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि किसी योनिमें जाकर अनेक प्रकारके दुःख भोगा करता है (जैसे) घोड़े, बैल आदिको ही देख लो कि, लोग उन पर मनमाना बोझ लादकर रातदिन उनसे काम लिया करते हैं, जब उन्हें कोई दूसरा घास देता है तब वे घास खाते हैं, जब कोई पानी पिलाता है तब वे पानी पीते हैं। थक जाने पर अथवा भूख प्यास लगनेपर किसीसे अपना कुछ दुःख नहीं कह सकते हैं कि, अब हम थक गये हैं अथवा हमें भूख प्यास लगी है, किसीने कुछ खिलाया तो खाया, पानी पिलाया तो पिया इस प्रकारसे संपूर्ण आयु पराधीन रहकर अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। इसलिये महात्मा पुरुषोंने कहा है कि--

क्यों खोवे नरतन वृथा, परे विषयके साथ।
पांव कुल्हाडी मारही, मूरख अपने हाथ।।

अरे मूर्ख! जिस सुरदुर्लभ मनुष्य देहसे आधि, व्याधि, जन्म, मरणादि दुःखोंसे सदाके लिये पीछा छुडा सकता है उसे नानाप्रकारके विषयोंके भोगमें क्यों खोकर अपने हाथसे अपनेही पांवपर कुल्हाडी मारता है? इसपर कबीर साहबने एक भजन भी कहा है।

जगतमें तोसम कौन अनारी ?। चहत बुझावन काम
अग्निको; विषयभोग घृत डारी।। टे०।। रह्यो सदा
झूठे झगरनमें, सठ प्रभुनाम विसारी। खायो पियो
अघाय पेटभर, सोयो पांव पसारी।। तृष्णाके बस
भटकत डोल्यो, निशि वासर झखमारी। छल परपंच
कपट फैलावत, उमर गवाँई सारी।। कबहुँ न सुमति
आनि उर तनकहु, देख्यो आंखि उघारी। "अन्त
समय यमदूत आयके, का गति करिहैं हमारी"।।
अजहूं मानु सीख सन्तनकी, भावभक्ति उर धारी।।
गहु गुरुशरण तरण भवसागर, कहें कबीर पुकारी।।

अब अर्थ लिखते हैं!

जगतमें तोसम कौन अनारी ? । चहत बुझावन काम
अग्निको विषयभोग घृत डारी ।। टे० ।।

हे भाई ! अग्निमें घृत डालनेसे अग्नि दूनी प्रज्वलित होती है और तू कामना-रूपी अग्निको विषयभोगरूपी घृत डालकर उसे बुझाना चाहता है इस कारण संसारमें तुझ सरीखा मूर्ख और कौन है ?

रह्यो सदा झूठे, झगरनमें, शठ प्रभुनाम बिसारी ।
खायो पियो अघाय पेटभरि, सोयो पांव पसारी ।।

हे भाई ! जिस समय तू गर्भवासमें था तब तो मालिक के सन्मुख तूने यह प्रतिज्ञा की थी, कि हे प्रभु ! आप मुझे इस संकट से निकालो अब मैं आपके उपकारको कभी नहीं भूलूंगा किन्तु, अब तो उस मालिक के नाम तकको भी सर्वथा भुलाकर इसी तेरे मेरे झूठे झगरोंमें दिनरात पडा रहता है तथा पेट भरकर खूब खा पी लेता है और पांव लम्बे किये सो रहता है ।

तृष्णाके वश भटकत डोल्यो, निशि वासर झखमारी ।
छल परपंच कपट फैलावत, उमर गवाँई सारी ।।

मुझे धन मिल जाय, राज्य मिल जाय, स्त्री मिल जाय, पुत्र मिल जाय इत्यादि अनेक प्रकारकी तृष्णाके वशीभूत होकर दिनरात वृथा इधर उधर झख मारता फिरता है और छल, कपट तथा प्रपंच के फैलानेहीमें आजतक अपनी सब आयुको खो बैठा है ।

कबहुँ न सुमति आनि उर तनकहु, देख्यो आंख उघारी
अन्तसमय यमदूत आयकै, का गति करिहैं हमारी ।।

दिन रातके चौबीस घंटोंमें किसी समय भी अपने हृदयमें किञ्चिन्मात्र सुबुद्धि लाकर ज्ञानरूपी नेत्रोंको खोलकर न देखा कि मृत्युके समय यमके दूत आकर हमारी क्या गति करेंगे ?

अजहूं मानु सीख सन्तनकी, भाव भक्ति उरधारी ।
गहु गुरु शरण हरण भवसंकट, कहैं कबीर पुकारी ।।

अबतक जो कुछ हुआ सो तो हुआ किन्तु हे भाई ! अब भी तू महात्मा सन्तोंके उप-देशको मान ले, और हृदयमें श्रद्धा और प्रेम धारण करके जन्म मरणादि दुःखोंको हरण करनेवाली गुरुकी शरणको ग्रहण कर, कबीर साहब पुकारकर कहते हैं ।

अति अमूल्य अवसर वृथा, खोवे विना विवेक ।
इकदिन त्रिभुवन धन दिये, मिलि न सके पल एक ।।

मनुष्यका जीवन एक बहुत बडा अमूल्य पदार्थ है, उसे बिना विवेक अर्थात् मूर्खतासे लोग व्यर्थ खोरहे हैं, एक दिन जब कि मृत्यु महारानी आकर सन्मुख खडी होगी उस समय कोई

त्रैलोक्यकी भी संपत्तिको देकर चाहे कि उसके बदलेमें यह जीवन एक पल और मिल जाय तो कदापि नहीं मिल सकता है, हाय ! कैसे अमूल्य पदार्थको लोग व्यर्थ खो रहे हैं।

राजपाट धन पायकर, क्यों करता अभिमान ?।
पाडोसीकी जो दशा, भई सो अपनी जान ।।

राजगद्दी तथा अर्ब खर्बकी धन संपत्तिको पाकर क्यों अभिमान करता है ? तेरा पडोसी भी तो बडा ऐश्वर्यवान् था उसकी क्या दशा हुई है ? वही दशा तू अपनी भी तो हुई जान अर्थात् जिस प्रकारसे वह अपना सब ऐश्वर्य छोडकर चला गया है, उसी प्रकारसे तुझे भी अपना सब राजपाट धन ऐश्वर्य छोडकर चला जाना पडेगा।

जाय झरोखे सोवता, फूलन सेज बिछाय।
सो अब कहुँ दीखे नहीं, क्षणमें गयो विलाय ।।

तेरा पडोसी तो अपने महलके झरोखेमें जहां अनेक प्रकारके सुखदायक पदार्थ उपस्थित रहते थे वहां फूलोंकी सेज बिछवा कर सोया करता था सो वह अब इस संसारसे कहीं नहीं देख पडता है, न जाने कहां अन्तरध्यान होगया ?

सहसबाहु दशकन्ध अरु, जरासन्ध शिशुपाल।
काल कलेवा करगयो, बडे बडे भूपाल ।।

अरे भाई ! और छोटे मोटे साधारण पुरुषोंकी तो बातही क्या है ? किन्तु सहस्रबाहु, रावण, जरासन्ध, शिशुपालादिक बडे २ राजेश्वरोंको भी कालने कलेवा कर लिया है अर्थात् इतने बडे २ को खा लेने पर भी उसका पेट नहीं भरा इनके अतरिक्त —

दुर्योधनसे और बहु, अतिरण धीर नरेश।
भये कालवश रहगई, लिखी कहानी शेष ।।

दुर्योधनके समान और भी बहुतसे शूरधीर रणधीर राजा लोगोंको कालने पकडके अपने गालमें रखलिये जिनका आज कहीं पता भी नहीं है। केवल किसी २ इतिहास पुराणोंमें उनकी कुछ कहानियेंमात्र लिखी हुई बाकी रहगई ह। इसीसे कहा है कि –

जग प्रपंच गन्धर्वपुर, मायिक स्वप्नसमान।
जानि तासु अभिमान मन, करत नहीं मतिमान ।।

जगत्का समस्त प्रपंच जो देख पडता है सो सब मायाकृत गन्धर्वनगर तथा स्वप्नके समान मिथ्या जान करके बुद्धिमान् पुरुष उसका अभिमान नहीं करते हैं, यह प्रपंच किस प्रकारका है ? सो कहते हैं।

एक पथिक किसी नगरको जाता था, चलते २ एक दिन सायंकाल तक उसे कोई ठहरने को स्थान न मिला इस कारणसे वह घबडाकर शीघ्रतासे किसी गांवमें पहुंचनेका प्रयत्न करने लगा, जब कुछ रात हुई और चारों तरफसे अन्धेरा छागया तब वह बहुत व्याकुल होकर इधर उधर देखने लगा। अन्तमें उसे कुछ दूरपर एक दीपकका प्रकाश दिखाई देने लगा, देखकर

उसके मनमें धैय आया, जाना कि यहां अवश्य कोई गांव होगा। अब तो उसके पांव बहुत शीघ्रतासे उठने लगे वहां जाकर देखता है तो यह कोई छोटा मोटा गांव नहीं है वरन् एक बडा लंबा चौडा विशाल शहर है, बहुत ऊँचे २ मकानोंके बीचमें चौड़ी २ स्वच्छ सडकें बनी हैं, दीपकका प्रकाश चारों तरफ इस प्रकार फैला हुआ है कि मानो दिन उदय हो रहा है, सडकके दोनों तरफ बडी २दुकानेंलगी हुई हैं जिनमें सब प्रकारके पदार्थ दुकानदार लोग बेच रहे हैं। पथिक भी अपनी आवश्यकतानुसार कुछ भोजनके पदाथ मोल लेकर, एक पवित्र धर्म्मशालामें गया जहां पथिकोंके लिये रहनेको भिन्न २ स्थान और प्रत्येक प्रकारकी सानकूलता विद्यमान थी, वहां यह आनन्दपूर्वक भोजन और जलपान कर आसन बिछाकर सो गया, दिनभरसे चलते थका २ हुआ तो थोडी ऐसी निद्रा आई कि दूसरे दिन सूर्य्य उदय होने पर उसने अपनी आंख खोली। उठकर देखता है तो न वहां कोई शहर है न दूकानें हैं न धर्म्मशाला है और न वहां कोई आदमी है, केवल एक लंबा चौडा स्वच्छ मैदान है।

यह देखकर पथिकको बडा आश्चर्य्य हुआ, मनमें विचार करने लगा हे प्रभु! यह क्या बात है? जहाँ मैंने इतना बडा शहर देखा बाजारें देखीं, पदार्थ मोल लेकर खाये धर्म्मशालामें आराम किया वहां इस समय कुछ भी नहीं, केवल एक सफाचट्ट मैदान है। इस प्रकार के आश्चर्यसागरमें डूबता उछलता हुआ वह वहांसे उठकर आगे चला, तो वहां आसपासके रहनेवाले कई मनुष्य मिले उनसे उसने पूछा कि, रात्रिको यहां एक बड़ाभारी शहर था जिसमें वहुतसी दुकानें थीं उनमेंसे मैंने कुछ भोजनके पदार्थ मोल लेकर भोजन किया था और एक धर्म्मशालामें विश्राम लिया था, किन्तु इस समय उठकर देखता हूँ तो वहां कुछ नहीं है, यह क्या बात है? उन्होंने उत्तर दिया कि भाई! तुम क्या जाने क्या कहते हो, यहां तो न कभी कोई शहर था न वाजार हम तो बहुत दिनोंसे यहीं रहते हैं, तुम्हें कहीं सोतेमें स्वप्ना आ गया होगा। यह सुनकर पथिकको और भी वड़ा आश्चर्य हुआ। आगे गया तो वहां एक महात्मा मिले उनको भी पथिकने अपना सब वृत्तान्त सुनाकर पूछा कि, महाराज! यह क्या बात है? उन्होंने उत्तर दिया कि भाई! उसे गंधर्व नगर कहते हैं, गंधर्व एक जातिके देवता हैं उनमें यह शक्ति होती है कि वे जो चाहते हैं सो कर लेते हैं। जब कहीं चाहते हैं वहां शहर वसा देते हैं और जब चाहते हैं तब उसे अन्तर्धान करदेते हैं, इसी कारणसे तो कबीर साहबने संसारको उसकी उपमा देकर एक भजन कहा है —

देखो २ जगत यह सपना है, ये तो इन्द्रजालकीसी
रचना है॥ टे०॥ सुत दारा गृह परिवार सभी, हैं
मिथ्या सदा नहिं सत्य कभी॥ हां! हां! अन्त कोई
नहिं अपना है॥ दे०॥ तू जो बाल वृद्ध अरु ज्वान
भयो; सब मायाकृत परपंच थयो। भ्रममात्र ये तेरी
कलपना है॥ दे०॥ द्विज शूद्र ग्रहस्थ वनस्थ भयो
वर्णाश्रमको अभिमान गह्यो। त्रयतापसे यह सब

तपना है ।। दे० ।। गन्धर्व नगर जैसे दृष्टि परे, मृगतृष्णाको नीर न प्यास हरे। रज्जुसर्प्पसे जैसे डरपना है ।। दे० ।। गुरुदेव कबीर कृपा जो करे, स्वपनेसे जगायके दुःख हरे ।। निज आतमरूप परखना है ।। दे० ।।

अब अर्थ लिखते हैं —

देखो २ जगत यह सपना है, ये तो इन्द्रजालकीसी रचना है ।। दे० ।।

देखो भाई ! इसे तुम अच्छी तरह विचारपूर्वक देख लो कि. यह जगत् भी एक स्वपना ही है जैसे बाजीगर इन्द्रजालकी विद्याके प्रभावसे बाग, वृक्ष, फल, फूल इत्यादिकी रचना दिखाकर अन्तर्धान कर देता है तैसेही इस जगतकी भी स्थिति है।

सुत दारा गृह परिवार सभी, हैं मिथ्या सदा नहीं सत्य कभी ।। हाँ ! हाँ। अंत कोई, नहिं अपना है ।। दे० ।।

पुत्र, स्त्री, घर परिवार आदि जगत्के जितने पदार्थ हैं सब मिथ्या हैं कदापि सत्य नहीं है, हाँ ! हाँ ! अवश्यमेव असत्य हैं इसी कारणसे तो अन्तसमय कोई अपने साथ नहीं जाता है।

तू जो बाल वृद्ध अरु ज्वान भयो, सब मायाकृत परपञ्च थयो। भ्रममात्र ये तेरी कलपना है ।। दे० ।।

प्रथम तू बालककी अवस्थामें उत्पन्न हुआ, फिर तरुण होकर अन्तमें वृद्ध बनगया; ये सब तेरी मनकी कल्पनासे भ्रममात्र मायाका प्रपञ्च होता रहा है, और तेरा स्वरूप तो सदा एकरस अखण्ड है।

द्विज शूद्र गृहस्थ वनस्थ भयो, वर्णाश्रमको अभिमान गह्यो। त्रय तापसे ये सब तपना है ।। दे० ।।

जन्मतेही शूद्र उत्पन्न हुआ, फिर संस्कार होनेसे द्विज होगया, फिर ब्रह्मचारी बनकर गृहस्थ बना, वनस्थ बना इत्यादि वर्णाश्रमका अभिमान धारण करके आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक इन्हीं तीनों तापोंमें तपायमान होता रहा।

गन्धर्वनगर जैसे दृष्टिपरैं, मृगतृष्णाको नीर न प्यास हरै। रज्जुसर्प्पसे जैसे डरपना है ।। दे० ।।

गन्धर्व जातिके देवताओंका बसाया हुआ नगर जिसप्रकार देख पडता है तथा ग्रीष्म ऋतुमें जैसे सूर्य्यकी धूपसे जो मारवाडकी भूमिमें मृगको जल प्रतीत होता है, उस जलसे किसीकी प्यास नहीं बुझती है जैसे रात्रिमें पडी हुई रस्सीको देखकर सर्प्पका भय लगता है, तैसेसी यह जगतका भी प्रपंच है।

गुरुदेव कबीर कृपा जो करैं, स्वपनेसे जगायके दुःख
हरैं। निज आत्मरूप परखना है ।। दे० ।।

कबीर साहेब कहते हैं कि, हे भाई ! जो गुरुदेवकी कुछ कृपा हो जाय तो इस जगत रूपी प्रपंचके स्वप्नसे जगाकर आधि; व्याधि जन्म, मरणादि अनेक प्रकारके दुःखोंसे छुडा देवें यही अपने परमानन्द आत्मस्वरूपकी पहचान करना है इसीसे कहा है कि–

कहूं कहांलग देख ले, झूठा है संसार।
बहुत गई थोडी रही, अब तो आंख उघार ।।

हे भाई ! मैं कहांतक कहूं ? तूही अपनी बुद्धिमें विचारकर देखले तो मुझे स्वयं निश्चय होजायगा कि, यह असार संसार सर्वथा मिथ्या है इस कारणसे बहुतसी अपनी आयु तो तूने इस संसारके झूठे झगडोंमें खो दी है, किन्तु थोडी और बाकी हैं, भला अब भी तो आंख खोल कर देख ले।

जो चाहे कल्याण निज, तौ मनसे मल धोय।
पूरणप्रेम प्रतीतयुत, सतगुरु शरणे होय ।।

यदि अपना भला चाहता हो तो, महात्मा सन्तोंकी सेवा सतसंगतिसे अपने हृदयकी मलिनताको स्वच्छ करके प्रेम और श्रद्धासहित सद्गुरुकी शरणागत होजा।

करि उपाय बहु पचि मरे, जप तप ध्यान लगाय।
बिन सतगुरु उपदेश नहिं, सके, परमपद पाय ।।

दान पुण्य, पूजा, पाठ, जप, तप इत्यादि अनेक प्रकारके चाहे जितने उपाय मनुष्य करता २ पचके मरजाय किन्तु बिना सद्गुरुके उपदेश ग्रहण किये कदापि कोई अखण्ड सुख नहीं पा सकता है।

सतगुरुदीक्षा बीज ले, बोवे निज उरखेत।
कल्पवृक्ष उत्पन्न होय; मन वांछित फल देत ।।

सतगुरुकी दीक्षारूपी बीजको लेकर, जो कोई अपने हृदयरूपी खेत में बोता है तो वह उगकर उसके हृदयमें कल्पवृक्षरूप होकर उत्पन्न होता है, वही कल्पवृक्ष जो कुछ उसके मनमें इच्छा होती है सो सब पूर्ण करता है किन्तु, सद्गुरुसे उपदेश ग्रहण करते समय यह बात पूर्णतया ध्यानमें रखना चाहिये कि अपने हृदयको अच्छी तरह शुद्ध करके पूर्ण श्रद्धा और प्रेमके साथ उपदेश ग्रहण करना चाहिये नहीं तो निष्फल होगा, क्योंकि जिस स्थानमें कूडा, कचरा घास, फूस इत्यादि बहुतसा ऊगा रहता है उस जगह बीज बोने से प्रथम तो उगताही नहीं और यदि ऊगा भी तो उसका झाड निर्बल होकर फल फूल नहीं दे सकता है।

कल्पवृक्षको बीज जो, गुरु बोयो उरमांहि।
श्रद्धाजल सींचे बिना, ऊगि सकत वह नांहि ।।

सतगुरुने उपदेशरूपी कल्पवृक्षका बीज जो हृदयमें बो दिया है वह बिना श्रद्धारूपी जल सींचनेके कदापि नहीं ऊग सकता है, क्योंकि बिना जलसे सींचे बीजमें अंकुर कैसे फूट सकता है ?।

श्रद्धाजल सीचै नहीं, संशय दीमक खाय।
कैसे ऊगे बीज गलि, माटीमें मिलिजाय ।।

उपदेशरूपी बीज जो सद्गुरुने शिष्यके हृदयरूपी पृथ्वीमें बोया है उसमें श्रद्धारूपी जल तो नहीं सींचा जाता, किन्तु उसके विपरीत यह विचार किये जाते हैं कि गुरुजीने जो यह मंत्र सुनाया है सच्चा है कि झूठा है ? इससे कुछ लाभ होगा कि, न होगा ? यह वेदोक्त मंत्र है कि मन गढ़न्त ? इत्यादि अनेक प्रकारके संशयरूपी दीमक उसे खा २ कर नष्ट किये देते हैं, तो कहो वह बीज कैसे उगेगा ? वह तो सड़ गलके मट्टीहीमें मिल जायगा।

संयम नियम अचार व्रत, जप तप आदि उपाय।
विना बीज जल सींचबो, वृथा खेतमें जाय ।।

गुरुसे दीक्षा लेना यह तो बीज का बोना है और यम, नियम, आचार, व्रत, जप, तप, इत्यादि साधन जलका सींचना है। सो बिना गुरुसे दीक्षा लिये जो कोई कुछ साधन करता है, सो मानो जैसे विना बीज बोय खेतमें पानी सींच २ के वृथा परिश्रम कर रहा है।

विन गुरुपद निश्वास नर, भरमै डामाडोल।
निकट प्रगट पावे नहीं, चिंतामणि अनमोल ।।

बिना सद्गुरुके चरणारन्दिोंमें विश्वास धारण किये मनुष्य डामाडोल अर्थात् क्या करूं ? क्या न करूं। इत्यादि प्रकारके संशयमें सब काल पडा रहता है किन्तु, उसके समीप जो प्रत्यक्ष अमूल्य चिन्तामणि रत्न है उसे नहीं प्राप्त कर सकता है।

किये दीन मुख क्यों ? फिरे आधि व्याधि अधीन।
परम रसायन औषधि, निकट त्यागि मतिहीन ।।

हे निर्बुद्धि मूर्ख ! तेरे पास जो जरामरण हरण करनेवाली परम रसायनरूप दिव्य औषधि है तिसको त्याग करके आधि (भय, सन्ताप, चिन्ता इत्यादि मानसिक रोग) तथा व्याधि (ज्वर शूल क्षय इत्यादि शारीरिक रोग) इनके वश में पडा हुआ तू अपनी मुखकी मुद्राको दीन बनाये क्यों फिरता है ? तो इसका यही कारण देख पड़ता है कि-

चेतनतत्त्व अनल्प लहि, कल्पवृक्ष निज पास।
तेहि तजिके सुखकी करे, आक ढाकके आस ।।

जिस चेतनतत्त्वसे संसारके समस्त पदार्थ जल, वायु, अग्नि सूर्य्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि उत्पन्न हुए हैं, उस महान् कल्पवृक्षको त्याग करके आक (आकड़ेका वृक्ष) ढाक

(पलाशका वृक्ष) से सुखकी अर्थात् अपनी कामना पूर्ण होनेकी आशा करता है तो जहां जिस पदार्थ का अभाव है वहांसे वह पदार्थ कैसे प्राप्त हो सकता है। ?

अति समीप सुखप्रद अमित, परमतत्त्व मणि गूढ़।
लहि न सके उर ढूँढ तेहि, पापकर्म वश मूढ़॥

हे मूर्ख ! तेरे बहुतही निकट अर्थात् हृदयके भीतर परमतत्त्व परमात्मा समस्त सुख का देनेवाला चिन्तामणिरत्न छिपा हुआ है, उसको तू अपने पापकर्मोंके प्रभावसे खोज कराके प्राप्त नहीं कर सकता है !

तजि विकल्प संसारके; धरि उर आतम ध्यान।
लहि महान निज शक्तिको, क्यों न बनै भगवान? ॥

बाह्य संसारके पदार्थोंसे जो तू सुखकी आशा रखता है कि इनसे मुझे सुख मिलेगा इस कल्पनाको सर्वथा त्याग करके अपने हृदयसे आत्मा के ध्यानसे स्वतःकी महान् शक्तिको प्राप्त करके परम ऐश्वर्यवान् क्यों नहीं बन जाता है ?

आतममांहि अनन्त बल, विद्या ज्ञान अपार।
भऱ्यो परम ऐश्वर्यको, अतुल विपुल भंडार॥

धन, द्रव्य, बल, विद्या, ज्ञान, उद्यम, ऐश्वर्य इत्यादि जिस किसी पदार्थकी तुम्हें इच्छा हो, सब कुछ तुम अपनी आत्मासे प्राप्त कर सकते हो, क्योंकि आत्मामें अनन्त बल, अनन्त विद्या, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त ऐश्वर्य आदि पदार्थोंका परम विशाल अतुल अपार महान् भण्डार भरा है।

पैठत ता भंडारमें, कौन प्रबल अस कष्ट।
जो न नष्ट होय सुख लहै, जगमें सर्वोत्कृष्ट॥

उस भण्डारके भीतर केवल तुम्हारे पहुँचनेही की देर है, फिर तुम्हें रोग, दरिद्रता, निरुद्यमता, निर्बलता इत्यादि नानाप्रकारके कष्टोंमेंसे ऐसा कौनसा महान् प्रबल कष्ट है ? कि, जो उस आत्मभण्डारमें पहुँचते ही सर्वथा निर्मूल होकर, जिस सुखकी इच्छा हो वह ऐसा कौनसा महान् सुख है कि, जो तुम्हें न प्राप्त होसके ? इसपर एक पुरातन कथा इस प्रकारकी है, कि —

पूर्वकालमें एक गाधिनामका महान् प्रतापवान् राजा था। उसने अपनी वृद्धावस्थाको निकट आते देखकर राज्यगादी तो अपने पुत्र विश्वामित्रको दे दी और आप वनमें तप करनेको चला गया। महान् पराक्रमी तथा धनुर्विद्यामें पूर्ण निपुण होनेके कारण राज्याभिषेक होनेके पश्चात् थोडेही दिनोंमें विश्वामित्रने अपने आसपासके राजा महाराजाओं को जीतकर उनपर अपना पूर्ण अधिकार जमालिया। और बहुत दूर तक अपना राज्य फैला कर न्यायपूर्वक प्रजाको पुत्रवत् पालन करने लगे।

एक दिन राजा विश्वामित्र हवा खानेको वनमें चले गये। फिरते फिरते अकस्मात् कहीं वसिष्ठजीके आश्रमपर जा पहुँचे। जहां कि, एक छोटीसी फूसकी झोपडीमें वसिष्ठजी रहा

करते थे। विश्वामित्रको राजा जानकर वसिष्ठजीने बहुत कुछ आदर संमानपूर्वक उनका स्वागत किया। क्योंकि संसारमें राजा भी ईश्वरकाही रूप गिना जाता है, इसकारण ऋषि मुनि, साधु, महात्मा गृहस्थ सभीको राजाका संमान करना चाहिये। यद्यपि वसिष्ठ ऐसे महान् विरक्त त्यागी पुरुष थे कि उनकी झोपडीमें एक दो फूटे टूटे कमण्डलु और फटी पुरानी काँपीनके अतिरिक्त और कुछ नहीं देख पडता था किन्तु विश्वामित्रका सत्कार तो उन्होंने इस प्रकार किया कि, जैसे कोई महान् राजाओंका सत्कार किया करते हैं। राजासे लेकर लश्कर पर्यन्तके लिये सोने चांदीके पात्रोंमें छप्पनों प्रकारके व्यंजन इत्यादि समस्त सुखकी सामग्री क्षणमात्रमें उपस्थित हो सबकी पूर्ण तृप्ति कर दी गयी। तबतो विश्वामित्रकोबडाही आश्चर्य हुआ और वसिष्ठजीसे पूछने लगा हे महाराज! प्रत्यक्षमें देखने को तो आपके पास कुछ भी नहीं है केवल एक महान् विरक्त साधु देख पडते हो किन्तु एक क्षणमात्रमें जो पदार्थ बडे २ राजा महाराजाओंको भी दुर्लभ हैं सो आप चाहते हो तब एकत्रित करलेते हो। यह क्या बात है? वसिष्ठजीको कुछ छिपाने की आवश्यकता तो थीही नहीं, सरलतासे आपने स्पष्ट कह दिया कि मेरे पास एक कामधेनु गऊ है, वह जो कुछ मुझे आवश्यकता होती है तत्काल पूर्ण करदेती है। कामधेनुका नाम सुनकर विश्वामित्रकाजी ललचा गया। कहने लगे महाराज! वह काम धेनु मुझे दे दीजिये। यद्यपि वसिष्ठजीको उसके देनेमें किसी प्रकार की हानि न थी किन्तु, विश्वामित्रको उस कामधेनुका अधिकारी न जानकर, उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि तुम उसके योग्य नहीं हो, इस कारण वह तुमको नहीं मिल सकती है। यह सुन कर विश्वामित्रको बडा क्रोध आया और चाहा कि, कामधेनु जबरदस्ती छीन ले जायँ। यह दशा देखकर उस कामधेनु गौके शरीरसे लाखों योधा उत्पन्न होगये और तत्काल बातकी बातमें विश्वामित्रकी समस्त सेनाको नष्टभ्रष्ट कर वहांसे भगा दिया, अन्तमें विश्वामित्र मनमें अत्यन्त लज्जित होकर अपने नगरको लौट आये और मनमें विचार करने लगे कि मैं ऐसा महान् पराक्रमी, जो बडे २ राजा महाराजाओं को भी जीतकर अपनेवशमें कर लिया है सो आज, एक निर्बल ऋषिके संमुख हार कर चला आया हूँ, इससे जाना जाता है कि ब्रह्मतेजको मैं अवश्य प्राप्त करूंगा। यह बात मनमें निश्चय करके तत्काल अपने पुत्र और पुरोहितोंको बुलाया और सब राजपाट उनके स्वाधीन करके आप वनमें तपस्या करनेको चले गये।

वहां जाकर प्रथम तो कुछ दिन फलाहार करते रहे तिसके अनन्तर जलाहार पर रहे अन्तमें केवल वायु भक्षण कर निराहार धूप ठंढ़ वर्षामें कठिन तपस्या करते २ साठ हजार वर्ष व्यतीत करदिया और तप करनेसे नहीं हटे। अब उनके तपके प्रभावसे समस्त ब्रह्मांड डगमगा उठा यह देखकर ब्रह्मदेव और इन्द्रादि देवताओंको बडा भय उत्पन्न हुआ, तत्काल विश्वामित्रके पास आकर कहने लगे हे महान् तपस्वी विश्वामित्रा आप धन्य हैंआपकेसमान तप करनेवाला तपस्वी त्रिलोकीमें कोई नहीं है। हम लोग आपके तपसे प्रसन्न हैं। मांगो! आपकी क्या इच्छा है? विश्वामित्रने कहा हे देवगण! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी ब्रह्मत्व प्राप्तिकी इच्छा पूर्ण कीजिये। सुनकर सब देवताओंने कहा "एवमस्तु।' आपको ब्रह्मत्व प्राप्त हो। और हम सब लोग तो आपको अब ब्रह्मर्षि कहेंगे किन्तु यह एक बात अपने ध्यानमें

रखना कि, जब आपको वसिष्ठादि महर्षि ब्रह्मर्षि कहें तब आपकी यथावत् इच्छा पूर्ण होगी। इतना कहकर देवता लोग तो अर्न्धान हो गये और विश्वामित्रजी तप करना समाप्त करके वसिष्ठाजीसे ब्रह्मर्षि कहलानेके लिये अयोध्याको चले क्योंकि वसिष्ठजी इक्ष्वाकुवंशके राजाओंके पुरोहित थे, इस कारणसे और भी अनेक ऋषि महर्षिके सहित बहुधा वे अयोध्या की राजसभामें उपस्थित रहा करते थे और इसी कारणसे वह सभा उस समय साक्षात् ब्रह्म-सभा गिनी जाती थी।

विश्वामित्रका उस सभामें जानेका यथार्थमें यही प्रयोजन था कि, वहां वसिष्ठजी मुझे ब्रह्मर्षि कहेंगे, ब्रह्मसभासे मुझे ब्रह्मत्व प्राप्त हो जायगा। किन्तु विश्वामित्र यद्यपि हजारों वर्ष महान् तीव्र तप कर चुके थे तथापि क्षत्रिय कुलमें जन्म लेनेके हेतु अब तक भी उनके जाति स्वभावने पलटा नहीं खाया था। धनुष, भाथा, खड्ग, धारण किये हुए अभिमान-पूर्वक सभामें जा पहुँचे। इन्हें देखते ही वहांके मन्त्री तथा अन्यान्य ऋषि मुनि तो सब उठकर बहुत कुछ आदर सन्मानसे इनको पहले उत्तम आसनपर बैठाकर फिर सब लोग अपने अपने आसनपर बैठे किन्तु, एक महात्मा वसिष्ठजी अपने आसनसे नहीं उठे और उलटे कहने लगे कि आइये। रार्जषि! यह कहकर उनका सम्बोधन किया, क्योंकि चाहे कोई कितना ही जप तप, व्रत, नियमादि क्यों न कर चुका हो, किन्तु जहांतक उसके हृदयसे राग, द्वेष दूर होकर ब्रह्मज्ञान न प्राप्त होजाय तहांतक उसे कोई कैसे ब्रह्मर्षि कह सकता है? बस इसी कारण वसिष्ठजीने उन्हें रार्जषि कहा था, रार्जषिका नाम सुनते ही विश्वामित्र तो आग बबूला हो गये। इतने वर्षोंतक तप करने पर भी उन्हें शान्तता नहीं प्राप्त हुई थी। यहांतक द्वेषता की कि वसिष्ठजीके सौ पुत्रोंको उन्होंने मरवा डाला और जहांतक होसका तहांतक दुःखदेनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं की इतना होनेपर भी वसिष्ठजी अपने हृदयमें विश्वामित्रका यद्यपि बहुत कुछ सन्मान ही रखते थे किन्तु, जब कईबार मिलनेपर वसिष्ठजीनें ब्रह्मर्षि नहीं कहा तो अन्तमें निराश होकर एक दिन विश्वामित्रको बड़ा ही क्रोध उत्पन्न हुआ और बार २ के अपमानकी असह्य वेदनाके कारण वसिष्ठजीका वध करनेका संकल्प करके रात्रिको उनकी झोपडीके पीछे जा खडे हुये और छिपकर उनके निद्रा आ जानेका रास्ता देखने लगे, क्योंकि, वे जानते थे कि इनके पास वह कामधेनु गऊ है कि जिसने मेरे सारे लश्कर सहित मुझे मारकर भगा दिया था।

उस समय निर्मल आकाशमें चंद्रमाका स्वच्छ प्रकाश फैला हुआ देखकर वसिष्ठजीकी स्त्री अरुन्धती कहने लगी हे प्राणनाथ! आजकी रात्रि कैसी शोभायमान है? चंद्रमाका प्रकाश चारों ओर कैसा निर्मल फैल रहा है? क्या प्रभो! ऐसा कोई संसारमें तपस्वी भी है? कि जिसके तपकी कीर्ति इस प्रकार की निर्मल फैली हुई है? सुनकर वसिष्ठजीने कहा हां, अवश्य संसारमें विश्वामित्रके तपकी कीर्ति पूर्णमासीके चन्द्रमाकी चांदनीसे भी विशेष निर्मल फैली हुई है। अरुन्धतीने कहा स्वामिन्, आप किसकी प्रशंसा करते हैं? विश्वामित्रजीने तो आपके निरपराध सौ पुत्रोंको वध कराडाला है। और जहांतक उनसे हो सकता है आपको भी कष्ट देनेमें किसी तरह कसर नहीं करते हैं। क्या तपस्वियोंका यही कर्तव्य हैं? वसिष्ठ-

जीने कहा हे अरुन्धति ! तू इस समय अपने स्वार्थभावसे बातचीत कर रही है। लड़कोंके मारनेका विचार तो तू छोड दे, क्योंकि कौन किसको मारता है ? और कौन किसको जिवाता है ? सब अपने २ कर्मों के अधीन मरते जीते रहते हैं, फिर तू देख कि, विश्वामित्रका कैसा प्रबल तप है कि जिन्होंने अपने तपके प्रभावसे एक दूसरी सृष्टि निर्माण कर दी है और आज वे जिसको चाहे उसको अपने स्वाधीन कर सकते हैं। सबको उनका भय है, सब उनकी प्रतिष्ठा करते हैं और तुझे जो वे कलंकित देख पड़ते हैं, सो तेरी स्वार्थपरतासे देख पडते हैं, यदि तू अपने स्वार्थके विचार सदाके लिये त्याग देगी तो तुझे स्वयं निश्चय होजाय कि, विश्वामित्र महान् तपस्वी तेजवान् ऋषि हैं। इत्यादि दंपतिकी परस्पर बातोंको विश्वामित्रजी झोपडीके पीछे खड़े हुए सुन रहे थे। हृदयमें बडे लज्जित होकर पश्चाताप करने लगे कि मैं कैसा मूर्ख महान् पापी हूँ, व्यर्थ इन महात्माके पुत्रोंका बध करा २ के दुःख देता रहा। और ये तो मेरे परम शुभचिंतक हैं कि मुखपर तो कुछ नहीं किन्तु पीठ पीछे ऐसी प्रशंसा करते हैं। वह विचार मनमें उत्पन्न होते ही विश्वामित्रजी जो कुछ अस्त्र शस्त्र धारण किये रहते थे सदाके लिये फेंक दिया और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाते हुए वसिष्ठजीके चरणोंमें आ गिरे। यह देखकर वसिष्ठजीको बडा आश्चर्य हुआ और कहने लगे 'हे ब्रह्मर्षि विश्वा-मित्र ! इस समय आप कहांसे आये ?' वसिष्ठजीके मुखसे ब्रह्मर्षि शब्द सुनते ही अपनी ब्रह्मत्व-प्राप्तिकी इच्छा पूर्ण जानकर उन्हें अवर्णनीय आनन्द प्राप्त हुआ और वह गद्‌ग स्वरसे बोले हे महाराज ! इस समय आपके दर्शनके लिये आया हूँ किन्तु आप कृपा करके यह तो बताये ! कि, जब कभी मैं आपके पास आता था, तब आप मुझे राजर्षि कहा करते थे, जिससे चिढ़कर मैं भी आपको तरह २ के कष्ट देता रहा, किन्तु आज आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहा इसका क्या कारण है ? वसिष्ठजीने हँसकर कहा कि—हे मुनींद्र ! इतने दिनोंतक आप अस्त्र शस्त्र धारण किये राजाओंकासा अहंकार रखते थे, तो ऐसी दशामें मैं आपको राजर्षिके अतिरिक्त और क्या कह सकता था ? किन्तु आज आपका वह स्वभाव समूल नष्ट होकर अभिमान रहित सतोगुणी हो गया है अतएव अब आप ब्रह्मर्षि हैं। यह सुनकर विश्वामित्र वसिष्ठजीके चर-णोंमें गिर पड़े और अपने अपराधोंको क्षमा कराने के लिये प्रार्थना करने लगे। वसिष्ठ ने कहा मैं तो पहलेहीसे क्षमा किये हुआ हूँ।

फिर विश्वामित्रजी हाथ जोडकर बोले, हे भगवन् ! वह कामधेनु गौ कहां है ? वसि-ष्ठजीने कहा वह हमारेही पास है। हमसे भिन्न वह कोई स्थूल पदार्थ नहीं है। हमारे अन्तरमें जो हमारी आत्मशक्ति है वही कामधेनु गौ है। जब मनुष्य आत्मदर्शी होजाते हैं तब वह कामधेनु उसकी सेवा में आप उपस्थित हो जाती है। आत्मदर्शीकी इच्छाशक्तिमें वह बल आजाता है कि, जो वह चाहता है सोई करसकता है। उस समय उसके लिये कोई बात दुर्लभ नहीं रहती है, उसी शक्तिको कामधेनु कल्पवृक्ष और चिन्तामणि भी कहते हैं।

गोरक्ष और कबीरसाहबका जब संवाद हुआ था, तब कबीर साहबने इसके विषयमें एक भजन भी कहा है —

अवधू ! अँधाधुन्ध अँधियारा। कोई जानेगा जानन
हारा ॥ टे० या घटभीतर बन अरु बस्ती, याहीमें

झाड पहारा। या घटभीतर बाग बगीचा, याहीमें सीचन हारा ।। अवधू० ।। या घटभीतर बिजली चमके याहीमें होय उजियारा। या घटभीतर अनहद गरजे वर्षे अमृतधारा ।। अवधू० ।। या घटभीतर सात समुन्दर, याहीमें नदिया नारा । या घटभीतर सूरज चन्दा, याही में नव लखतारा ।। अवधू० ।। या घटभीतर सोना चाँदी, याहीमें लगी बजारा। या घटभीतर हीरा मोती, याहीमें परखनहारा ।। अवधू० ।। या घटभीतर काशी मथुरा, याहीमें गढ गिरनारा । या घटभीतर देवी देवा, याहीमें ठाकुरद्वारा ।। अवधू० ।। या घटभीतर ब्रह्मा विष्णु, शिव सनकादि अपारा ।। या घटभीतर आय लेते हैं, राम कृष्ण अवतारा ।। अवधू० ।। या घटभीतर कामधेनु है, कल्पवृक्ष इक न्यारा । या घट भीतर ऋद्धिसिद्धिके भरे अटल भंडारा ।। अवधू० ।। या घटभीतर तीन लोक हैं, याहीमें सिरजनहारा । कहे कबीर सुनो हो अवधू, याहीमें गुरू हमारा ।। अवधू० ।।

इसका अर्थ तो स्पष्टही है किन्तु अच्छी तरह समझमें आजानेके लिये फिर भी लिख देता हूँ –

अवधू ! अँधाधुन्ध अधियारा, कोई जानेगा जानन हारा ।। टे० ।।

अवधू नहीं है वधू, अर्थात् स्त्री माया (कनक कामिनी) जिसको ऐसा जो बिरत पुरुष गोरक्ष है उससे कबीर साहब कहते हैं कि । हे अवधू ! जैसे अन्धेको केवल अन्धकारके अतिरिक्त और कुछ नहीं देख पडता है उसी अन्धकारमें वह अपनी धुन बांधे हुआ चला जाता है, तैसे ही यह सब संसार बहुधा अपनी धुनमें अँधाधुन्ध चला जा रहा है । कोई यह विचार नहीं करता है कि, यह जो सूर्य, चन्द्र, तारा, समुद्र, झाड, पहाड, नदी, नारा इत्यादि अद्भुतप्रपंच देख पडता है, किसने बनाया है ? तथा वह बनाने वाला वास्तवमें कहां रहता है ? तो इस बातको कोई विरला ज्ञानवान्ही जानता है कि–

या घटभीतर बन अरु बस्ती, याहीमें झाड पहारा ।
या घटभीतर बाग बगीचा, याहीमें सीचनहारा ।।

इस शरीरके भीतर जो हृदयाकाश है उसमें मन जब प्रत्येक प्रकारके संकल्प विकल्पोंसे रहित होजाता है तब सूनसान एक महान् बन बन जाता है। और जब संकल्प विकल्प करने लगता है, तब वहां नगर बसकर अनेक प्रकारके झाड, पहाड, बाग बगीचा बनजाते हैं और इसीमें उस बगीचेका सीचनेवाला भी उपस्थित हो जाता है।

या घटभीतर बिजली चमके, याहीमें होय उजियारा।
या घटभीतर अनहद गाजे, बर्षे अमृतधारा।।

इसीके भीतर एक महान् शक्तिमान् विद्युत चमकती रहती है जिसका प्रकाश इसमें हुआ करता है, उससे चाहे जो काम मनुष्य लेसकता है। और इसीमें अनहदशब्दकी गर्जन होकर निरन्तर अद्‌भुतकी धारा वर्षा करती है कि जिस अमृतको पान करनेसे नानाप्रकारकी भयानक असाध्य व्याधियोंकी तो बातही क्या है? वरन् मृत्युतक भी नष्ट हो जाती है।

या घटभीतर सात समुंदर, याहीमें नदिया नारा।
या घटभीतर सूरज चन्दा, याहीमें नौ लख तारा।।

इसीके भीतर दूध, दही, जल इत्यादिके सात समुद्र लहरें लेरहे हैं तथा गंगा, यमुना सरस्वती इत्यादि महान् २ नदियोंसे लेकर छोटे २ नाले नालियाँ तक बह रही हैं और इसीके भीतर सूर्य चन्द्रमा और नौ लक्षतारे भी प्रकाश कर रहे हैं।

या घटभीतर सोना चांदी, याहीमें लगी बजारा।
या घटभीतर हीरा मोती, याहीमें परखनहारा।।

इसीके भीतर सोना, चांदी जो कुछ लेना चाहो सबकी बजारें लगीहैं और इसीमें हीरा, मोती इत्यादि अनेक प्रकारके रत्न तथा उन रत्नोंका परखनेवाला भी उपस्थित है।

या घटभीतर काशी मथुरा, याहीमें गढ गिरनारा।
या घटभीतर देवी देवा, याहीमें ठाकुरद्वारा।।

इसीके भीतर काशी जहां अन्नपूर्णा, कालभैरव सहित विश्वेश्वर महादेव वास करते हैं? तथा मथुरा जो भगवान् कृष्णचन्द्रका मुख्य स्थान है और गिरनार जहां सिद्ध, साधु, महात्मा

---

१ छान्दोग्योपनिषद्‌में भी कहा है कि—यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म। दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम् तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति।" अर्थ— इस शरीरमें जो यह छोटासा कमलके समान गृह है उसमें जो हृदयाकाश है, उस हृदयाकाश में जो वस्तु है सो ढूंढने योग्य है और वही विशेषता से जानने योग्य है। तथा—"यावान् वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन् समाहितमिति।" अर्थ—जितना यह आकाश उतनाही हृदयकमलके भीतर आकाश है, उसीमें स्वर्ग भूमि दोनों हैं और उसीमें अग्नि, वायु, सूर्य चन्द्रमा, नक्षत्र ये सब विद्यमान है। जो यहां इस आकाश में है और जो नही है सो सब इस हृदयपुण्डरीकवाले आकाशमें है।

निवास करते हैं इत्यादि तीर्थस्थान सब इसीमें हैं। तथा अकने और देवी देवता सहित ठाकुर-द्वारा अर्थात् परमात्माका पवित्र मन्दिर भी इसीमें है।

या घटभीतर ब्रह्मा विष्णू शिवसनकादि अपारा।
या घटभीतर आय लेत हैं राम कृष्ण अवतारा।।

इसीके भीतर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सनकादिक, नारदादिक अनन्त महापुरुष और रामकृष्णादिक अवतार भी इसीमें आकर धारण किया करते हैं।

या घटभीतर कामधेनु है, कल्पवृक्ष इक न्यारा।
या घटभीतर ऋद्धि सिद्धिके, भरे अटल भंडारा।।

इसीके भीतर जो कुछ तुम कामना करो उसे पूर्ण करनेवाली आत्मशक्ति कामधेनु गऊके अतिरिक्त समस्त कल्पनाओंको पूर्ण करनेवाला मानसिक दृढ संकल्परूपी कल्पवृक्ष भी एक औरही है। कहांतक कहें? इसके भीतर ऋद्धि सिद्धियोंके अटल भंडार भरे हुए हैं।

या घटभीतर तीन लोक हैं, याहीमें सिरजनहारा।
कहे कबीर सुनो हो अवधू! याहीमें गुरू हमारा।।

इसीके भीतर स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तीनों लोकऔर इनको बनानेवाला जिसकी इच्छा मात्रसे ये समस्त प्रपंच बनाहै वह इसीमें रहता है और कबीर साहब कहते हैं कि हे अवधू! हमारा गुरु सर्वत्र रमण करनेवाला आनन्द "रामानन्द" भी इसीमें है।

कहनेका सारांश यही है कि, बाहर ब्रह्माण्डमें सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि जो कुछ पदार्थ देखनेमें आते हैं सो सब इस साढेतीनहाथके पिण्डमें विद्यमान हैं बाहर किसी पदार्थको ढूंढनेकी आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता केवल इतनीही है कि सद्गुरुकी शरणागत होना चाहिये इसीसे कहा है कि—

ढूंढे देश विदेशमें, घर हीराकी खान।
सतगुरु बिन को खान की? करवावे पहिचान।।

कोई काशी, कोई मथुरा, कोई जगदीश, कोई रामेश्वर, कोई बद्रीनारायण कोई द्वारका, कोई गिरनार इत्यादि कहांतक गिनावें। मनुष्य दौडा २ भटकता फिरता है जानता है कि, वहां कोई मालिक मिलजायगा वह हमारा दुःख दूर कर देगा किन्तु हे भाई! रत्नोंकी खान तो तुम्हारे ही घरमें है परन्तु विना सद्गुरुके उस खानिकी पहचान कौन करावे? कि, जिस खानमें समस्त ऋद्धि सिद्धिका भंडार भरा हुआ है।

कुञ्जी ता भण्डारकी; सतगुरुके है हाथ।
भक्ति बिना नहिं मिलसके, इतउत पटके माथ।।

उस भंडारको खोलनेकी कुञ्जी सतगुरुके हाथमें है, हैं, सो विना श्रद्धा और प्रेम सहित सतगुरुकी भक्तिके इधर उधर शिर पटकनेसे कभी नहीं मिल सकती है।

यन्त्र मन्त्र आराधना, त्यागी सकलकी आस।
सतगुरुके उपदेशमें धारे दृढ विश्वास।।

यंत्र, मंत्र, देवी, देवता, भूत, प्रेतादिकी आराधना करनेसे मेरा मनोरथ पूर्ण होगा यह संपूर्ण आशा छोडकर केवल एक सतगुरुके उपदेशमें ही दृढ विश्वास धारण करे कि, मेरा समस्त कल्याण अवश्य इसीसे होगा।

सब सुखप्रद गुरुदेव हैं, यह निश्चय उर आनि।
प्रेमसहित पूजन करे, प्रतिमा प्रभुकी जानि।।

क्या सांसारिक सुख क्या पारलौकिक सुख, जितने प्रकारके संपूर्ण सुख हैं तिन समस्त सुखोंको देनेवाले गुरुदेवही हैं। यह बात हृदयमें निश्चयपूर्वक धारण करे तथा गुरुको परमात्मा की मूर्ति जानकर प्रेमसहित सदाकाल पूजन करे।

गुरुभक्ती करि देत हैं, सकल पापको नाश।
जैसे चिनगी आगकी, परी पुरानी घास।।

गुरुकी भक्ति जन्म जन्मान्तरोंके समस्त पापोंको इस प्रकारसे नाश कर देती है कि जैसे अग्निकी एक किञ्चितमात्र चिनगारी पर्वतके समान पुराने घासके महान् ढेरमें पडतेही एक क्षणमात्रमें उस संपूर्ण घासके ढेरको भस्म करके निःशेष करदेती है।

जाके मनसे एकक्षण, घट न गुरु पद प्रेम।
केहि कारण धारण करे, सो नर दूजो नेम।।

जिन पुरुषोंके हृदयमें गुरुके चरणारविन्दोंसे एक क्षणमात्रमें भी प्रेम किञ्चिन्मात्र भी न्यून नहीं होता है उन पुरुषोंको अन्य किसी प्रकारका दूसरा नियम किस लिये धारण करना चाहिये ?

यह तो गुरुके पूर्ण भक्तोंके लिये कहा है किन्तु इनके अतिरिक्त जो तीन प्रकारके १आर्त २ अर्थार्थी ३ जिज्ञासु भक्त हैं उनको क्या कर्तव्य है ? सो आप कहते हैं।

तनसे दुष्ट अचार तजि, मनसे दुष्ट विचार।
धनसे श्रद्धायुत करै, सन्तनको सतकार।।
यहि विधिसे अर्पण करे, तनमनधन जो कोय।
सतगुरु शरणै जायके, शिष्य कहावे सोय।।

शरीरसे चोरी, हिंसा, व्यभिचार इत्यादि जो दुष्ट आचरण हैं तिनको सर्वथा त्याग करदेवे, और मनमें जो काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष इत्यादि नानाप्रकारके दुष्ट विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें कदापि न उत्पन्न होने देवे, और धनसे जहांतक होसके पूर्ण श्रद्धा सहित सन्त महात्मा पुरुषोंको अन्न, वस्त्र, स्थानादिकी जो कुछ आवश्यकता हो सो पूर्ण करे। इस प्रकारसे जो कोई पुरुष सतगुरुकी शरणमें जाकर अपना तन, मन, धन अर्पण करता है वही सच्चा शिष्य

कहलानेका अधिकारी होता है। फिर उस शिष्यको क्या करना चाहिये ? कि जब कभी सतगुरुके दर्शनको जावे तब और कुछ विशेष न होसके तो—

पत्रपुष्पफल भेंट धरि, करि प्रणाम शिर नाय।
भक्ति मुक्तिकी युक्ति सब, पूछे अवसर पाय।।

पत्र अर्थात् पान, फूल, फल इत्यादि जो कुछ होसके गुरुके सम्मुख धरके भेंट करे, जिसके अनंतर गुरुके चरणारविन्दोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करे फिर जब कभी सतगुरुको प्रसन्नचित्त देखे तब एकान्तमें अवसर पाय इस प्रकार प्रश्न करे कि हे गुरुदेव ! गुरुभक्ति किस प्रकार करनी चाहि तथा मुक्ति प्राप्त होनेकी क्या युक्ति है।

सतगुरुसे उपदेश सुनि, स्थिर होयके इक ठौर।
मनन करे उरमांहि तेहि, तजि विकल्प सब और।।

उक्त प्रश्नोंके उत्तरमें सतगुरु जो कुछ उपदेश करें उसे एकाग्रचित्तसे श्रवण करके एकान्तमें जाबैठे और फिर अन्तःकरणसे समस्त संकल्पना त्याग करके सतगुरुके मुखारविन्दसे जो उपदेश श्रवण किया है उसको बार बार मनन करे।

करत करत अभ्यास अस, दरशे आतमरूप।
उद्भव उरमें होय इक, अनुभवशक्ति अनूप।।

इस प्रकारसे अभ्यास करते २ अपने स्वरूपका बोध होने लगता है और अन्तःकरणका विक्षेप दोष दूर होकर उसमें एक प्रकारकी अनुभव शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

सतगुरुकृपा प्रताप जो, मिलै वस्तु घटमांहि।
अनुभवहीसे पाइये, कहन सुननसे नांहि।।

सतगुरुकी कृपाके प्रतापसे जो पदार्थ इस घटके भीतर प्राप्त होता है वह अनुभवहीसे प्राप्त होता है, किसी प्रकार कहने सुननेसे नहीं प्राप्त होता है, वह क्या पदार्थ है ? मनकी एकाग्रता, क्योंकि जबलग मनकी एकाग्रता नहीं होती है तबलग कहने सुननेसे कुछ लाभ नहीं होता है इसी कारण सतगुरुने कहा है —

जबलग मन स्थिर होत नांहि, तबलग आतमज्ञान।
कहन सुनन अस जान जस, हाथीको अस्नान।।

जबतक मन एकाग्र नहीं होता है तबतक आत्मज्ञानकी बातोंके सुननेसे किसी प्रकारका लाभ भी नहीं होता है जैसे हाथीको इधर स्नान करादिया कि उधर उसने फिर सूंडसे धूल कचरा उठाकर शरीरपर डाल लिया और ज्योंका त्यों बनगया।

जिन कबीर मन स्थिर किया, दृढ गहि अपने हाथ।
तिनको नांहि बाकी रह्यो, मिलिवो त्रिभुवननाथ।।

और जिन्होंने इस मनको मजबूत पकडकर अपने हाथमें स्थिर करलिया है उनके लिये

कबीर साहब कहते हैं कि त्रिलोकाधिपति जो परमप्रभु सत्यपुरुष है उसका मिलना फिर उसे बाकी नहीं रहा है, अब उस मनको एकाग्र करनेकी आप कुछ युक्तियें बताते हैं।

तनसे मनको खैंचकर, निर्विकल्पनिष्काम।
करै आतमामाँहि लय, तब दर्शे उर राम।।

शरीरके बहिर्मुख इन्द्रियोंके द्वारे जो मनकी वृत्तियें बटी हुई हैं तिनको एकत्रित करे और फिर मनको संकल्प विकल्प तथा कामनाओंसे रहित करके आत्मध्यानमें लय करे तब मालिकका दर्शन हृदयमें प्राप्त होता है। अथवा—

गुरुपद ध्यान लगायके; अजपा सोहं जाप।
जपे निरंतर हृदयमें; दर्शय आतम आप।।

गुरुके चरणकमलोंमें ध्यान लगाकर "सोहम्" २ इसप्रकारका जो अजपा जाप है तिसका हृदयमें निरन्तर जप करनेसे अपने आप कुछ दिनोंमें आत्म अनुभव होने लगता है।

तेहि अनुभव सुखकी कथा, मुखसे कही न जाय।
मनमें जानत स्वाद अस, जस गूंगा गुड खाय।।

उस आत्मअनुभवसे जो कुछ सुख प्रतीत होता है उसका वर्णन मुखसे नहीं किया जा सकता है जैसे गूंगा गुड खाकर उसका स्वाद मनमें ही जानता है मुखसे नहीं कुछ कह सकता है

आतमको अनुभव भये, नाशत सकल विषाद।
चित्रदीप सम होत स्थिर, त्यागि वृथा बकबाद।।

जिस किसी पुरुषको आत्मअनुभव हो जाता है उसके समस्त दुःख स्वयं नष्ट होजाते हैं। और वह चित्रदीपकके समान सदा अचल होकर बाद प्रतिवाद अर्थात् वृथा बकवादको त्याग देता है।

ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, नहि जान्यो निजरूप।
बाहर खोजै बावरे, तजि उर वस्तु अनूप।।

वक्ता ज्ञानी लोग व्यर्थ जबानी जमाखर्च करके लम्बी चौडी ज्ञानकी बातें बनाया करते हैं, किन्तु, अपने निज स्वरूपको नहीं जानते हैं इसकारण हृदयमें जो उपमारहित अपूर्व पदार्थ है तिसको त्यागकर बाहर जंगल पहाडोंमें सुखदाई पदार्थ ढूंढते फिरते हैं।

वस्तु कहीं खोजे कहीं, कैसे आवे हाथ?।
कहे कबीर ता वस्तुका, भेदी लीजे साथ।।

पदार्थ तो पूर्वदिशामें है और उसे ढूंढनेके लिये पश्चिम दिशाको जाता है तो कहिये भला वह पदार्थ किस प्रकारसे प्राप्त हो सकता है! इसकारण उस पदार्थको जो कोई जानता हो कि वह पदार्थ उस स्थानपर है उसको साथ लेना चाहिये वही उसको प्राप्त करसकता है इसीसे कबीर साहब कहते हैं।

आतम दर्शन जो चाहे, सुनले ध्यान लगाय।
गुरुभक्ती सतसंग बिन, नहिं कोइ और उपाय।।

हे भाई! जो तू आत्मदर्शन करना चाहता है तो मैं जो कुछ कहता हूँ सो ध्यानपूर्वक एकाग्र चित्तसे श्रवण करले। कि, विना गुरुकी भक्ति और सन्तोंका सतसंग किये आत्मदर्शनका संसारमें और कोई उपाय नहीं है।

सफल समय वह जानु जो, सुने सन्तनकी बात
और सांझ परभात सब, वृथा जात दिनरात।।

समय कुछ उपयोगमें आकर सफल हुआ है तो वही समय सफल हुआ है कि, जिस समय कोई महात्मा सन्तकी बात सुनी है, नहीं तो बाकीका समय तो सायंकालसे प्रभाततक सोनेमें और प्रभातसे सायंकालतक संसारके झूठे झगडोंमें वृथा दिनरात व्यतीत होता जाता है।

सन्तोंके सतसंगमें, परमतत्त्वकी हाट।
सतगुरुसे सौदा करो, घटके खोलि कपाट।

सन्तोंके सतसंगमें, जिस परमतत्त्वसे दया, क्षमा, शांति, धैर्य, सत्य, विचार, संतोष इत्यादि सद्‌गुरु प्रगट होते हैं उस परमतत्त्वकी दूकानें लगीं हैं अतएव तुम अपने हृदयके संशय और कपटके किवाडोंको खोलकर सद्‌गुरुकी शरणमें जावो और उनको अपना तन मन, धन, अर्पण करके परमतत्त्वकी प्राप्ति करलो।

सतसंगतिमें होत सुख, जो अनुभव उरमाहिं।
इन्द्रलोक वैकुण्ठमें, वह सुख स्वप्नेहु नाहिं।।

सन्त महात्माओंकी सतसंगतिमें जो कुछ सुख प्रत्यक्ष अपने हृदयको अनुभव होता है, वह सुख इन्द्रलोक अर्थात् देवराज इन्द्र महाराज जहां निवास करते हैं वहां स्वप्नेमें भी वह सुख अनुभव करनेको नहीं मिल सकता है।

सतसंगतिमें जात नर, जो नित्यप्रति गहिनेम।
कवहुंतो भाव कुभाव मिटि, बाढे प्रभुसे प्रेम।।

जो कोई मनुष्य दृढ नियम धारण करके नित्यप्रति महात्मा संतोंकी सतसंगतिमें सदा जाया करता है तो उसके अंतकरणसे कभी न कभी दुष्ट भावोंकी भावना नष्ट होकर अवश्य मालिकमें प्रेमकी वृद्धि होजाती है। इस विषयमें एक चोरकी कथा सुनाते हैं कि, सतसंगके प्रभावसे उसे क्या फल मिला था ?

किसी नगरमें एक महान् कट्टर चोर रहा करता था उसके एक पुत्र था जब उस चोरके प्राणान्त होनेका समय आया तव वह अपने पुत्रको बुलाकर कहने लगा कि, और जो कुछ शिक्षा तुझे देनी थी सो सब तो मैंने तुझे दे ही दी है किन्तु, यह मेरी एक और बात खूब ध्यान में रखना कि, "कभी भूलसे भी किसी साधुके पास और कथा कीर्तन सतसंगमें न जाना" यह बात कहकर चोर तो मृत्युको प्राप्त हुआ और पुत्र उसकी आज्ञा को वेद मन्त्रके समान पालन करने लगा।

एकदिन वह कहीं किसी दूसरे नगरमें चोरी करनेको जाने लगा मार्गके किनारेही पर कोई महात्मा कुछ कथा कीर्तन कर रहेथे येभी कहीं उन्हींके पाससे जा निकला, कथाके किसी प्रसंगमें महात्माने कहा कि "देवताके शरीरमें छाया नहीं होती हैं" यह वाक्य अकस्मात् कहीं इस चोरके कानमें भी जा पडा किन्तु यह तो अपने पांव उठाये चलागया। सीधा जाकर यह तो राजाके महलमें पहुँचा। वहां देखता है तो पहरेवाले सब सोरहे हैं, दरवाजेमें घुसकर महलके भीतर जहां राजा रानी सोये उसी स्थानपर जा पहुँचा। देखता है तो वहां राजा रानी तो निःशंक पलंगपर सोरहे हैं और रानीके पहननेका बहुमूल्य रत्नका चन्द्रहार शिरहाने की तरफ एक खूंटीपर लटक रहा है। देखतेही इस चोरने तो वह हार उठालिया और दबे पांवों महलके बाहर निकलकर अपना रास्ता लिया। हारको तो लेजाकर कहीं जंगलमें गाड दिया और आप जहां कहीं ठहरा हुआ था, वहां आकर सो रहा।

प्रभात होतेही ज्यों ही रानीकी नींद खुली तब देखती है तो खुंटीपर हार नहीं है तब राजासे कहा, राजाने सुनतेही तत्काल सब दास दासियोंको बुलाकर, बहुत कुछ पूछताछकी कराई किन्तु कहीं पता न लगा। अंतमें राजाने पुलिसको बुलाकर कहा कि, आज रात्रिको महलसे रानीका हार चोरी गया है उसका शीघ्र पता लगाओ, नहीं तो तुम्हें शिक्षा दूंगा। राजा की आज्ञानुसार पुलिस नगरमें अनुसंधान करने लगी कहीं एक अपरचित नवीन मनुष्य उसकी दृष्टिमें आनेसे! उसे संशय हुआ कि, बहुधा इसीने रानीका हार चुराया होगा। यह जानकर पुलिसने उसे पकड़ लिया और राजाके संमुख लाकर कहा कि—महाराज ! हमलोगोंका संशय है कि बहुधा इसीने हार चुराया होगा। सुनकर राजाने आज्ञादी कि इसे मेरे संमुख बांधकर मारो। राजाकी आज्ञानुसार पुलिसने उसे बांधकर मारना शुरू किया। मारते २ उसे यहांतक मारा कि उसके सारी देहकी चमडी फट गयी किन्तु वह कोई कच्चा पक्का तो थाही नहीं कि जो इतनेमें स्वीकार करलेता। वह तो बडा कट्टर चोर था। यही कहता रहा 'मंने नहीं लिया" महलके चौवारेमें बैठी हुई रानी भी यह चरित्र देख रही थी। स्त्रियोंका हृदय स्वाभाविक कोमल तो होता ही है सिपाहियोंको बेहिसाब मारते देखकर चोरपर दया आ गई। राजा को बुलवाकर कहा कि अब आप इसे पिटवाइये मत। मैं जहां रहती हूँ वहां एक कोठरीमें इसे रखवाकर ताला लगवा दीजिये। और उसकी कुञ्जी मेरे पास भेज दीजिये। इसने मेरा हार लिया है, कि नहीं लिया है, कल प्रभात में आपको कह दूंगी। राजाने रानीके कथनानुसार चोरको कोठरीमें बन्द कराकर कुञ्जी रानीके पास भेज दी।

जब आधी रात्रिका समय आया तब रानीने अष्टभुजा देवीका स्वांग बनाकर एक हाथमें खप्पर, एक हाथमें जागती ज्योतिकी थाली, एक हाथमें खड्ग, एक हाथमें त्रिशूल धारण किया और धीरेसे जिसमें चोर बन्द था उस कोठरीका दरवाजा खोलकर भीतर घुसगई देखा तो चोर बेसुधा सोया है जाते ही यह देवी तो उसकी छाती पर चढ बैंठी और पूछने लगी की बता ! तूने वह रानीका हार कहां धरा है ? आंख खुलतेही एक बार तो उसके मुखसे यह बात निकल गई कि हां ! मात ! मारे मत, बताताहूँ ! किन्तु जब उस चोरकी दृष्टि उसकी छायापर पडी तब उसे महात्मासे सुनी हुई बात स्मरण आगई कि "देवताके शरीरमें

छाया नहीं होती हैं चलता पुरजा तो था ही तत्काल अपनी चाल बदलकर कहने लगा –हे घटपिण्डकी जाननेवाली जगज्जननी ! हे मातेश्वरि ! तूही बता कि मैंने रानीका हार कहां लिया है ? रानीने कहा अरे ! तूने अभी कहा था कि हां ! माता बताताहूं ? अब क्यों बदलता है, कहने लगा–हे माता ! मैं नहीं जानताकि निद्रामें मेरे मुखसे क्या बात निकल गई है ? किन्तु तू तो सबके रोम २ की जाननेवाली है, भला संसारमें ऐसी कौनसी बात है जिसको तू नहीं जानती है तेरे संमुख मैं झूठ किस प्रकारसे बोल सकता हूं ? राजा मार २ कर व्यर्थ मेरा प्राण ले रहा है और तू जानती है कि मैं निरपराध हूँ । तेरे सिवाय मेरी रक्षा करनेवाला संसारमें और कौन है ?

रानीने बहुतेरा उसे डराया, उसके शरीरमें कई जगह त्रिशूल चुभाया कई जगह जलाया किन्तु उस बन्देने तो एक भी न गिना केवल उन महात्माके वाक्यपर अटल श्रद्धा रखकर उसीके शिर डालता रहा कि, हे माता ! तू सब जानती है तुझसे कुछ छिपा नहीं है ! अन्तमें रानीने जब देखा कि यह मुझे देवी तो वास्तवमें जानता ही है यदिइसने लिया होता तो अवश्य कह देता । यह बात मनमें विचार कर उसे तो वहीं उस कोठरीमें बन्द करदिया और आप देवीका स्वांग उतारकर अपने पलंगपर जा सोई। प्रभात होतेही राजाको रात्रिकी सब बातें सुनाकर कहने लगी कि, मैंने अच्छी तरह परीक्षा करके देखलिया यह चोर नहीं है इसे इतना मारपीट कर वृथा ही कष्टदिया गया है, अब इसे छोड दीजिये । रानीकी बातको सुनकर राजाने उसे कुछ पारितोषिक देकर छोड दिया ।

यह चोर अपने घर आकर आनन्दपूर्वक रहने लगा, कई दिनके पश्चात् न जाने उसके पापकर्मों की समाप्ति होकर किसी प्रबल पुण्यका उदय होना था जो उसके मनमें एक दिन यह बात आई कि, रास्ते चलते जिन महात्माका एक वाक्य कानमें पडनेसे मुझे इतना बडा लाभ हुआ है कि, केवल एक मेरा ही क्या ? वरन् मेरे बालबच्चोंकी कई पीढ़ियों तक का भी दुःख दरिद्र दूर होगा ? यह बात मनमें विचार कर उसने एक चांदीके थालमें कुछ फल फूल, मेवा मिष्टान्न तथा एक दुशाला और कुछ अशरफियें नगद रखकर स्त्री पुत्र सहित सबको साथ लिये बड़ी धूम धामसे गाते बजाते जैसे किसी देवताकी मानता उतारने जाते हैं वैसे उन महात्माके स्थानपर गया और वहां जाकर प्रथम तो पुष्पकी माला महात्माको पहना दी और फिर दुशाला उढ़ाकर प्रसाद फल तथा अशरफियें भेंट की और सन्मुख चरणोंमें गिरकर साष्टांग प्रणाम करने लगा। महात्मा भी देखकर चकित होगये। मनमें कहने लगे यह क्या बात है? ऐसा तो सेवक हमारे देखनेमें आजतक कोई नहीं आया है, यह विचार कर उससे पूछने लगे कि हे भाई ! तुम कौन हो ? उसने कहा महाराज ! मैं तो चोर हूँ। चोर का नाम सुनते ही महात्माजीके तो होश उड़ गये, कहने लगे कि अच्छा भाई ! तुम कोई भी होओ हमें क्या करना है ? किन्तु यह जो कुछ तुम भेंट पूजा लाये हो सो सब अपनी उठा ले जावो हमें कुछ नहीं चाहिये, हमने तो इन सब पदार्थोंको त्यागकर विराग धारण किया है। सुनकर वह बड़ी नम्रतापूर्वक दीनभावसे हाथ जोडकर आदिसे अंत तक अपनी सारी कथा सुनाकर कहने लगा हे प्रभु ! अब मैं आपकी शरण आया हूँ आप मुझे दीक्षा देकर मेरा उद्धार

कीजिये, नहीं तो अभी मैं अपने प्राण त्याग करूंगा । महात्मा दयालु तो होतेही हैं, कहने लगे अच्छा ? आजतक तूने जो कुछ किया सो तो किया है किन्तु आजसे चोरी व्यभिचार और मिथ्या भाषण करनेका सर्वथा त्याग करेगा तो हम दीक्षा देंगे । सुनते ही उसने तत्काल तीनों बातोंका त्याग किया और महात्मासे दीक्षा लेकर नित्यप्रति उनकी सत्संगति करने लगा ! अब तो थोडेही दिनोंके बीचमें केवल एक वही क्या ? वरन् स्त्रीपुत्रसहित उसके समस्त कुटुम्बी भी कुछ औरके औरही होकर सब परम साधु बन गये इसीसे कबीर साहबने यह भजन कहा है कि --

सन्तकी महिमा अपरंपार। सन्त और भगवंतमें अन्तर, तनक व देखु विचार ।। टे० ।। वेद पुराण भागवत गीता, कहत सकल निराधार। सन्त समान और कोई नाहीं, अधम उधारनहार ।। सं० ।। सन्त समागम सम कोई तीरथ, और नहीं संसार। मज्जन करत जन्मके पातक, कटत न लागै बार ।। सं० ।। काम क्रोध मद मोह द्रोह तजि, गुरुपदके आधार। रहत सदा सन्तोष धारि डर, परखिके सार असार ।। सं० ।। महा मलीन हीनमति पामर, अघ अवगुन आगार। होय प्रवीण नीतियुत तिनके, सुनि उपदेश उदार ।। सं० ।। जा घर सन्त दया करि जनपर, आवत लेन अहार। ता घर दुःख दरिद्र नाश होय; भरत अटल भंडार ।। सं० ।। जो नहिं होते संत जगतमें, को अस करि उपकार। डूबत आय करत जीवनको, भवसागरके पार ।। सं० ।। कहि न सकत कवि कोविद कोई, संतनको व्यवहार। निशि वासर गुण गावत मान्यो, शेष सहस मुख हार।। स० ।। रवि नहिं होत मलीन दुष्टके, लाय उडाये छार। कह कबीर सन्त की निंदा, कर ताहि धिक्कार ।। स० ।।

अब इसके अर्थको भी सुनलो।

संतकी महिमा अपरंपार। सन्त और भगवंतमें अन्तर, तनक न देखु विचार ।। टे० ।।

महात्मा सन्तकी महिमा किसीने पार नहीं पाया अपार है क्योंकि, महात्मा सन्त और परमात्मामें किञ्चित भी किसी प्रकारका अन्तर नहीं है इस बातको तुम खूब अच्छी तरह अपने मनमें विचार करके देख लो।

वेद पुराण भागवत गीता, कहत सकल निरधार।
सन्त समान और कोइ नाहीं, अधम उधारनहार ।।

वेद, पुराण, भागवत, गीता इत्यादि जितने शास्त्र हैं सबने यह बात निश्चय करके कही है कि सन्तके समान पापियोंका उद्धार करनेवाला और दूसरा कोई नहीं है।

सन्त समागम सम कोइ तीरथ, और नहीं संसार
मज्जन करत जन्मके पातक, कटत न लागे बार ।।

सतसंगतिके समान संसारमें और कोईभी तीरथ नहीं है क्योंकि काशी, प्रयागादि तीर्थोंमें स्नान करनेसे तो किसी कालान्तरमें एक आधही पापकी निवृत्ति होती है किन्तु सन्तोंके सतसंगरूपी तीर्थमें स्नान करनेसे तो अनेक जन्मांतरोंके समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं, तभी गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायणमें कहा है कि—

मज्जन फल देखिये तत्काला। काक होय पिक बकहु
मराला ।। सुनि आश्चर्य्य करो जनि कोई ।। सतसंगति
महिमा नहिं गोई ।।

सन्तोंके सतसंगरूपी तीर्थका फल तत्काल देखलो कि उसमें स्नान करतेही काक तो कोयल और बगला हंस बन जाता है, इस बातको सुनकर आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि सन्तोंके सतसंगतकी महिमा संसारमें कुछ छिपी हुई नहीं है।

काम, क्रोध, मद, मोह, द्रोह तजि, गुरुपदके आधार।
रहत सदा सन्तोष धरि उर, परखिके सार असार ।।

महात्मा सन्त काम, क्रोध, अहंकार, मोह, द्रोह इत्यादि दुर्गुणोंको त्याग करकेगुरुदेवके उपदेशकी सहायतासे, संसारके सारासार पदार्थोंकी परीक्षा करके, सदा काल हृदयमें सन्तोष धारण किये रहते हैं जिसके प्रभावसे —

महा मलीन हीनमति पामर, अघ अवगुन आगार।
होत प्रवीण नीतियुत जिनके, सुनि उपदेश उदार ।।

महा मलीन हृदयके, बुद्धि रहित नीच पुरुष जो पाप और दुर्गुणोंके घर बन रहे हैं वे भी उन महात्माओंके नीतियुक्त उदार उपदेशोंको सुनकर परम ज्ञानवान् बन जाते हैं।

---

* भागवतमें लिखा है कि, भगवानने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहा है कि 'साधवो हृदयं मह्यं, साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत्ते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि ।।" अर्थ-साधु मेरे हृदयमें हैं और मैं साधुओंके हृदयमें हूँ, जो मेरेको वे अलग नहीं जानते हैं मैं उससे भी उनसे किंचित् अलग नहीं हूँ।

जा घर सन्त दयाकरि जनपर, आवत लेन अहार ।
ता घर दुखदारिद्र नाश होय, भरत अटल भण्डार ।।

जिस किसी भाग्यवान् भक्तके घर सन्त दया करके आहार लेनेके वास्ते आते हैं उसके घरमें दुःख दरिद्र नाश होकर ऋद्धि सिद्धिके अटल भंडार भर जाते हैं।

जो नहिं होते संत जगतमें, को अस करि उपकार? ।
डूबत आय करत जीवनको, भवसागरके पार ।।

यद्यपि संसारमें महात्मा सन्त न होते तो इस जन्ममरणरूपी भवसागरमें डूबते हुए जीवोंको बचाकर यह महान् उपकार कौन करता ? इसीसे तो कहा है कि —

कहि न सकत कवि कोविद कोऊ, सन्तनको व्यवहार
निशिवासर गुण गावत हारे, शेष सहस मुख हार ।।

व्यास, बाल्मीक आदि महान् २ कवि तथा साक्षात् सरस्वती, बृहस्पति इत्यादि विद्वान् कोई भी सन्तोंके उद्यमको नहीं कथन कर सकते हैं, रात्रिदिवस सन्तोंके गुणकी महिमाको शेषनाग भी सहस्त्रमुखसे गान करते २ हार गये हैं किन्तु यथावत् गान नहीं कर सके हैं इसीसे तो गोस्वामीजीने कहा है कि —

विधि हरि हर कवि कोविद वानी । कहत साधुमहिमा
सकुचानी ।। सो मोसम कहिजात न कैसे ! । साक
वणिक मणिगुण गण जैसे ।।

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, व्यास, बृहस्पति, सरस्वती ये भी सब सन्तोंका महात्म्य वर्णन करनेमें संकोच करते हैं, क्योंकि उनकी महिमाको यथावत् नहीं कर सकते हैं, वह सन्तोंकी महिमा मुझसे किसी किसी प्रकार नहीं कही जा सकती है ? जैसे साक बेचनेवाला रत्नके गुणोंको नहीं कह सकता है।

रवि नहिं होत मलीन दुष्टके, लाय उडाये छार ।
कहे कबीर संतकी निंदा, करे ताहि धिक्कार ।।

यदि कोई दुष्ट पुरुष धूल लाकर सूर्यके तरफ फेंकता है तो उस धूलसे सूर्य कुछ मलीन नहीं होता किन्तु उलटकर वह धूल फेंकनेवाले हीके माथेपर आकर गिरती हैं, तैसेही कबीर साहब कहते हैं कि जो कोई महात्मा सन्तकी निन्दा करता है उस निन्दासे महात्माकी तो कुछ हानि नहीं होती है, किन्तु उलटा वह निन्दा करनेवाला ही संसारमें धिक्कारका पात्र बन जाता है, इसीकारण सन्तोंका माहात्म्य बडा है जैसे कि —

सतसंगति सुरसरित सम, सकल पाप हरिलेत ।
ज्ञानधारजल धोय मल, हृदय विमलकरिदेत ।।

सन्तोंकी सतसंगति गंगाजीके समान समस्त पापोंको हरण करलेती है, जो ज्ञानरूपी जलकी धारासे हृदयको धोकर निर्मल कर देती है।

काशी मथुरा द्वारिका, हरद्वार गिरनार।
और ठौर सतसंग विन, मिले न कहुं करतार।।

काशी, मथुरा, द्वारका, हरद्वार, गिरनारइत्यादि तीर्थ जंगल पहाडोंमें चाहे ढूंढते फिरो किन्तु, बिना महात्मा सन्तोंकी सतसंगतिके परमात्माकी प्राप्ति और किसी स्थानमें नहीं हो सकती है।

जो होवे उर रामके, दरशनकी अभिलाष।
जाय सदा सतसंग नित, करु संतोंके पास।।

यदि तुम्हारे हृदयमें रामके दर्शन करनेकी पूर्ण इच्छा हो तो नित्य सन्तोंके पास जाकर सदा उनका सतसंग किया करो।

मिलना चाहो रामसे, ढूंढो सन्तन मांहि।
राम दुहाई संत तजि, अन्त राम कहुं नांहि।।

हे भाई! जो तुम रामसे मिलना चाहते हो तो और सब जगे छोडकर केवल सन्तोंमेंही उसे जाकर ढूंढो, कबीर साहब कहते हैं कि मैं रामकी दुहाई देकर अर्थात् प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि, सन्तोंको छोडकर और कहीं भी राम मिलनेवाला नहीं है।

निराकार वह राम है, लहि न सकें कोइ अन्त।
जो चाहो आकारयुत, प्रत्यक्ष गुरुअसन्त।।

हे भाई! राम तो निराकार है, उसको कोई किसी अन्य स्थानपर नहीं प्राप्त कर सकता है किन्तु, जो तुम साकार राम चाहते हो तो प्रत्यक्ष गुरु और सन्तही साकार राम हैं।

फिरे ढूंढ़ता रामको, मूरख चारों धाम।
वहां कहांसे मिलसके, घटमें बैठा राम।।

अज्ञानी लोग रामको जगदीश, रामेश्वर, द्वारिका, बद्रीनारायण इन चारों धामोंमें भटक २ कर ढूंढ़ता फिरता है किन्तु, वहां उन धामों में राम कहांसे मिल सकता है? क्योंकि राम तो घट अर्थात् अपनेही हृदयमें बैठा हुआ है।

रम्य निरन्तर आतमा, सब घट आठों याम,।
याहीसे संतन धर्यो, राम तासुको नाम।।

हे भाई! आत्मा जो समस्त प्राणी मात्रके हृदयमें आठों पहर निरन्तर रमण करता रहता है, इस कारणसे सन्तोंने उस आत्माका नाम राम रख लिया है, आत्मासे भिन्न राम कोई दूसरा पदार्थ नहीं है।

राम राम निशिदिन जपे, जानि राम कहुँ दूर।
राम निरंतर रमि रह्यो सब घटमें भरपूर।।

राम कहीं अपनेसे दूर कोई भिन्न पदार्थ है, यह बात बहुधा लोग जानकर हाथमें माला लिये दिन रात राम २ जपा करते हैं किन्तु राम तो स्वयं सबके घटमें निरन्तर भरपूर रमण कर रहा है, जरा उसकी तरफ ध्यान देनेहीकी देर है कि फिर जप करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं रहती है।

सुमिरन करे न रामको, मनमें ध्यान लगाय।
लोग दिखावनके लिये, जपे सुनाय सुनाय।।

बहुधा लोग मनको एकाग्र करके ध्यानपूर्वक तो रामका स्मरण नहीं करते हैं किन्तु लोगोंको दिखानेके लिये जोर २ से रामराम जप करते हैं, तो कहिये ऐसे जप करनेसे क्या लाभ हो सकता है ?।

राम जपत बहु दिन भये, नहिं दरशनसे काम।
प्यास बुझै कैसे विना, पिये लिये नाम।।

रामका नाम जपते तो बहुत दिन व्यतीत होगये हैं किन्तु अबतक रामका दर्शन होनेका काम नहीं है तो कहो भला बिना जलके पिये केवल जलका नाम लेनेसे प्यास कैसे बुझ सकती है ?।

विमुख फिरे तू रामसे, तजि मनमें विश्वास।
तो तेरेसे मिलनकी, काह ताहि अभिलाष।।

हे भाई ! तू तो रामका विश्वास छोड करके रात दिन रामसे विमुख होकर अपने स्वार्थके कामोंमें यहां तक लगा रहता है कि एक क्षणमात्र भी तुझे रामके तरफ ध्यान देने तकको भी अवकाश नहीं मिलता है तो फिर बता तो सही कि रामही को तेरी ऐसी क्या आवश्यकता पड रही है ? कि "मान न मान मैं तेरा महिमान" ऐसी जबरा दस्ती करके तुझे आपही आप आ मिले ?

मूंड मुंडाये बहुत दिन, भयो मिलो नहिं राम।
राम बिचारा क्या करे, वृथा भये सब काम।।

मूंड मुंडाकर साधु बनानेको तो बहुत दिन होगये किन्तु रामसे मिलनेका अबतक काम नहीं है, तो कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई ! इसमें रामका क्या दोष है ? राम बिचारा इसमें क्या करे ? तू तो सब कामही ऐसे व्यर्थ करता है कि जिसमें राम न मिले।

माला तो करमें फिरे, जीभ फिरे मुखमाहिं।
मन चहुँ दिश मार्‍यो फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं।।

मणियोंको खिसकानेसे माला तो हाथमें फिरती जाती है तथा राम २ कहनेसे जीभ भी मुखमें फिरती जाती है और मन यह करना है यह नहीं करना इत्यादि विचार करनेमें चारों तरफ मारा २ फिरता है, तो कबीर साहेब कहते हैं कि हे भाई ! यह स्मरण करना नहीं है, क्योंकि,—

माला मोसे लडपडी, क्या तू फेरे मोंहि।
जो मन फेरे जगतसे, राम मिलाऊँ तोंहि ।।

मैं भी माला फेरा करता था तो एक दिन माला मुझसे लड़ पडी और लडकर कहने लगी तू मुझे क्यों वृथा फिराता है ? मुझे फिरानेसे क्या होगा यदि तू अपने मनको जगतके तरफसे जरा फेरकर रामके तरफ लगा दे तो तत्काल तुझे रामसे मिला दूँ।

माला तो मनकी भली, फिरे जो आपहि आप।
जीभ होठ हाले नहीं, होवे अजपा जाप ।।

तुलसी, रुद्राक्ष, स्फटिक इत्यादिकी मालाओंकी कोई आवश्यकता नहीं है, माला तो सबसे उत्तम केवल एक मनकी ही कि जिसमें जरा उधर ध्यान देनेहीकी देर है फिर तो न होठ हिलाना पडे और न जीभ। अपने आपही स्वयं अजपा जाप हुआ करता है, किन्तु, इसका यथार्थ भेद बिना गुरुके नहीं प्राप्त हो सकता है। इसीसे कहा है कि ––

केहि बिधि दरशे राम उर, बिन गुरुपद अनुराग।
चकमक बिना प्रगटे नहीं, जिमि पथरीसे आग ।।

जैसे पथरीके बीचमें आग तो भरी रहती है किन्तु बिना चकमकके वह प्रगट नहीं हो सकती है, तैसेही समस्त प्राणीमात्रके हृदयमें परमात्मा विराजमान है किन्तु बिना गुरुके चरणारबिन्दोंमें प्रेम उत्पन्न हुए उसके दर्शन नहीं प्राप्त हो सकते।

थोडा सुमिरन बहुत सुख, जाविधि उरमें होय।
सो विधि गुरु बिन आपही, पायसके नहिं कोय ।।

जिस विधिसे थोडाही स्मरण करनेसे बहुतसा सुख हृदयमें प्राप्त होसकता है, उस विधिको बिना गुरुके कोई आपही आप स्वयं नहीं पा सकता है।

गुरुमग श्रवण लगायके, शब्द सुने जो कोय।
रोम रोममें रामको, सुमिरण आपहि होय ।।

जिस प्रकारसे गुरु युक्ति बतावें उस प्रकारसे शब्दमें कान लगाकर सुने तो उसे मालूम होजायगा कि मुखसे राम २ जपनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है शरीरके प्रत्येक रोम-रोममें रामका स्मरण तो स्वयं आपही हो रहा है।

सहजेही धुन होत है, हरदम घटके माँहि।
सुरति शब्दमें लाभ ये, मुखकी हाजति नाँहि ।।

मनकी वृत्तिको एकाग्र करके शब्दमें लगानेसे शरीरके भीतर सरलतासे स्वयं धुनि निरन्तर सदाकाल सुन पडा करती है, मुखसे राम २ जपनेकी कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती।

मुख करकी मेहनत मिटी, सतगुरु करी सहाय।
घटमें नाम प्रगट भयो, बकिबकि मरे बलाय ।।

मुखसे राम २ कहनेका तथा हाथसे माला फेरनेके परिश्रम करनेको तो सद्गुरुने मिटा दिया और घटके भीतर नाम स्वयं प्रगट होगया है तो फिर हम क्यों कुछ बक बकके मरें अर्थात् जब गुरुकृपासे मन एकाग्र होकर परमात्मामें लगगया तो फिर मुखसे बकनेकी आवश्यकता क्या रहजाती है ? जैसे कि महर्षि वाल्मीकिजी जिन्होंने रामायण बनाई है, जातिके भील थे, इनका नाम पहले रत्नाकर था, लूट खसोटके काममें बडे निपुण थे। जंगलमें तीर कमान लिये कहीं पर्वत के कन्दरेमें अथवा किसी झाडपर छिपे रहा करते थे और जब कोई मनुष्य उधरसे निकलता तो मारकूटके उसका माल असबाब लूट लेते और उसीसे अपने कुटुम्बियोंका पालन पोषण किया करते थे। जिस जंगल में ये रहा करते थे उधरसे जाना आना लोगोंने छोड दिया था, क्योंकि सैकडों मनुष्योंको तो इन्होंने तीरोंसे मारडाला और हजारोंका माल असबाब लूट लिया था इस कारणसे रत्नाकर भीलका नाम सुनतेही लोग कांप उठते थे, किन्तु इन सब बुराइयोंके साथ साथ कुछ गुणभी थे कि एक तो ये कभी झूठ नहीं बोलते थे, दूसरे जिस कामको ये करने लगते थे उसमें इनके मनकी वृत्तियें एकाग्र होकर लग जाती थीं। यह देखकर परमात्माको स्वीकार हुआ कि, इसकी वृत्ति इस दुष्ट कार्यसे फेरकार सतकर्म के तरफ लगा दी जायगी तो कुछ उत्तम काम बन जायगा।

नारदजीने कहीं इनका हाल सुन पाया, उनके मनमें दया आगई। बीणा बजाते हुए उसी जंगलमें जा निकले जहां एक वृक्ष पर ये रत्नाकर भील चढकर छिपा हुआ बैठा था। बीणा हाथमें बज रही है, मुखसे परमात्माकागुणानुवाद गाते हुए नारदजी, जब उस वृक्षके पाससे कुछ आगे निकल गये, तो झटपट रत्नाकर वृक्षसे नीचे उतर आया। पापकर्मोंसे उसका हृदय तो कठोर होही गया था, पुकारकर कहने लगा ठहरो जो कुछ पासमें हो देते जावो। नारदजीने गाना बन्द कर दिया, पीछे फिरकर देखते हैं तो रत्नाकर भील उनकी तरफ चला आरहा है, ये खडे होगये और पहले खूब ठठ्ठाकर हँसे और फिर कहने लगे अच्छा ! आज मैं तुमको वह चीज दूंगा कि, जिससे तू सच्चा रत्नाकर बन जायगा। उसने कहा हँसी ठठ्ठाको छोड कर जो कुछ पास हो झटपट दे दो, नहीं तो यह बाण मारता हूँ। नारदजी बोले पहले तू यह तो बता कि तू कौन है ? जो मुझको इस प्रकार धमकी बता रहा है ? मुझको न तो कोई मार सकता है और न मुझे किसीका कुछ भय है। यह सुनकर रत्नाकर डरा और मनमें विचार करने लगा कि यह छोटासा दुबला पतला मनुष्य कौन है ? जो ऐसी निर्भयतासे मेरे सन्मुख बोल रहा है। किन्तु फिरभी डपट कर कहने लगा मेरा नाम रत्नाकर है, आने जानेवाले मेरा नाम सुनतेही कांपते हैं, ले जल्दी कर जो कुछ पास हो सो झट देदे नहीं तो अब तेरे प्राणोंकी कुशल न होगी।

सुनकर नारदजीने उसके तरफ नेत्र उठाकर देखा तो मानों एक बिजलीसी चमक गई, जिसे देख रत्नाकर कांप गया तब नारदजी कहने लगे अरे मूर्ख ! तू महान् पापी है, अन्तमें तेरी क्या दशा होगी ? तू इतना पाप क्यों करता है ? उसने कहा मेरे वृद्ध माता पिता हैं, स्त्री है, लडके बच्चे हैं उनका पालन पोषण करना मेरा धर्म्म है मैं न करूं तो उनका पालन पोषण कौन करे ? मैं इसी उद्योगसे उनका पालन पोषण करता हूं। तब नारदजीने कहा कि अच्छा, तू यह एक मेरा कहना मान कि जाकर एकबार तू अपने कुटुम्बियोंसे यह बात

पूछ आ कि, वे तेरे पापके भागी भी हैं अथवा केवल अपने खाने पीनेहीके साथी हैं? देख तो वे क्या उत्तर देते हैं? फिर जो कुछ तू कहेगा सो मैं करूंगा। नारजीके वचनोंमें न जाने क्या प्रभाव था सुनतेही वह कहने लगा बहुत अच्छा, किन्तु, जबतक मैं पूछकर न आऊं तब तक तुम यहीं खडे रहना में अभी आता हूँ नारदजीने हँसकर कहा जा मैं यहीं खडा हूँ।

रत्नाकरने घर जाकर अपनेसंबन्धियोंसे पूछा कि मैं जो कुछ पाप करता हूँ उसमें तुम सब साक्षी हो कि नहीं? सुनकर सबने सोचा कि आजतक इसने कभी यह बात नहीं पूछी थी मालूम होता है आज इसको पकडनेके लिये अवश्य कहींसे दौड आरही है तभी यह बात आकर हमसे इसने पूछी है। कदाचित् वे लोग आकर हमको भी न पकड ले जाँय, यह समझकर सबके सब कहने लगे, संसारमें कोई किसीके पाप कर्मका साथी नहीं है "जो करे सो भरे" 'रत्नाकर अपने सब कुटुम्बियोंसे यह उत्तर सुनकर शुन्न हो गया स्वार्थपरताका भेद खुल गया, जैसे ढकी हुई राख दूर हो जानेसे अग्नि चमकने लगती है तैसे ही रत्नाकरकी मोहरूपी राख दूर होनेसें आत्मशक्ति छिपी हुई प्रगट होगई, वह समझ गया कि संसारमें सब अपने २ स्वार्थके साथी हैं, माता पितादि कुटुम्बी कोई किसीका नहीं है "सब जीते जीका नाता है, अन्तमें कोई काम नहीं आता है" इत्यादि विचारोंसे मानो शोकका पहाड टूट पडा। हृदयपर गहरी चोट लगी विराग उत्पन्न होगया। तत्काल घरसे बाहर निकल तीर कमान जंगलमें फेंककर नारदजीके निकट आपहुंचा। इसके हृदयमें निश्चय होगया कि ये कोई पूर्ण महात्मा सन्त हैं, परमात्माने मेरेही उद्धारके लिये इन्हें यहां भेजा है, आतेही नारदजीके चरणोंपर गिर पडा और आर्त नादसे हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगा कि हे दयानिधे! मैं महान् दुष्ट अपराधी अधम पापी हूँ, जन्मसे मैंने इतने पाप किये हैं कि जिनका अन्त नहीं है, किन्तु आप मेरे अवगुणोंके तरफ न देखकर अपनी दयालुतासे मुझे उपदेश देकर मेरा उद्धार कीजिये।

नारदजीने रत्नाकरको शिरसे पांवतक देखा तो वह कुछ और का और ही होगया था अहंकार की जगह में उसके हृदयमें दीनता और क्रूरताके स्थानमें दयाने आकर पूरा अपना अधिकार जमा लिया था। आजतक जो रत्नाकर लोगोंका धन माल लूटता था वह अब भक्ति लूटनेका अधिकारी पाया गया। नारदजी देखकर बडे प्रसन्न हुए, मनमें समझ गये कि, यत्न सफल होकर काम बन गया, बोले जा जल्दी स्नान कर आ फिर मैं तुझे दीक्षा दूंगा सुनतेही वह दौडा गया और तलावसे तत्काल स्नान कर आया। नारदजीने "रामनाम" का उपदेश देकर कहा कि एकान्तमें बैठकर राम राम जपा कर। रत्नाकर रामराम तो नहीं कह सका किन्तु, बडे प्रेमसे मरामरा जपने लगा उस प्रेमके प्रभावसे हृदय शुद्ध होकर वह शक्ति उसमें प्रगट हो गई कि, रामायण ऐसी महान् पुस्तकको सरल स्वभावसे बना डाला। सारांश यह है कि मनुष्य अपनी सारी आयु घरही क्या? वरन् अनेक जन्म जन्मातर तक भी चाहे दिन रात रामराम क्यों न जपा करे किन्तु जहां तक उसके हृदयमें सच्चा प्रेम नहीं है तहां तक कुछ नहीं हो सकता है। अतएव प्रताप नारायणजी एक कवि हुए हैं जिन्होंने यह भजन कहा है कि —

देहु किन बादि जन्म शत खोय, प्रेम बिन सांची
सुख नहिं होय ॥ टे० ॥ जोरि धन लेहु सुमेरु

समान, सबै पढ़ि लेहु पुराण कुरान। बनो विधिते बढिकै बुद्धिमान, करे सुर राजहु तब सन्मान।। व्याहि किन लेहु लक्ष्मी जोय। प्रेम विन०।। तीर्थ मिस पार सृष्टिके जाहु, जन्म भरि व्रत करि पियहु न खाहु। दानमें देहु सर्व वसुधाहु, करो तपहित सजीव तन दाहु।। पुजि सब पर्वत डारो धोय। प्रेम विन०।। बादमें जीत लेहु जग जाय, लेख लिखि सको हँसाय रोवाय। वक्तृतामें गिरि देहु ढहाय, बनो मदमांहि वेणुके भाय।। चालमें धरिहु देहु डुबाय। प्रेम विन ०।। धारि हियेमें हरिकी परतीत, करो संतगुरुसे सांची प्रीति। गहो ऋषि मुनि सन्तनकी रीत, तबै सुख पैहो होय निर्भीत। कहे परताप सुनो प्रिय लोय। प्रेम विन०।।

इसका अर्थ यह है कि —

देहु किन बादि जन्म शत खोय, प्रेम विन सांचो सुख नहिं होय।।

अन्य वृथा कामोंमें अनन्त जन्म क्यों न खो दो, किन्तु प्रेमके विना सत्य सुख जो परमपद मोक्ष है वह कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है।

जोरिधन लेहु सुमेरु समान, सबै पढिलेहु पुरान कुरान। बनो विधिते बडिके बुधिमान, करे सुरराजहु तब सन्मान।। व्याहि किन लेहु लक्ष्मी जोय, प्रेमविन०।।

चाहे सुमेरु पर्वतके समान धन एकत्रित कर लो, चाहे, वेद शास्त्र पुराण कुराण सभीको पढ डालो, चाहे ब्रह्मासे भी विशेष बुद्धिमान् बन जाओ, चाहे देवताओंका राजा इन्द्र तक भी तुम्हारा सन्मान करने लग जावे, और चाहे साक्षात् लक्ष्मी ही से विवाह करके उसे अपनी स्त्री बनालो किन्तु, सत्य सुख तो बिना प्रेमके कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है।

तीर्थ मिस पार सृष्टिके जाहु, जन्म भरि व्रत करि पियहु न खाहु। दानमें देहु सर्व वसुधाहु, करो तपहित सजीव तनदाहु।। पूजि सब पर्वत डारो धोय प्रेमविन ०।।

चाहे तीर्थके बहाने बद्रीनारायण, रामेश्वर इत्यादि चारों धाम ही क्या किन्तु समस्त सृष्टिको भी उल्लंघन कर चले जाओ और जन्मसे मरणपर्यन्त सारी आयु बिना कुछ खान

पान उपवास करके ही व्यतीत कर दो, तथा समस्त भूमण्डल दानमें दे दो और तप इस प्रकारका करो कि जीवित शरीरको ही दग्ध करके भस्म कर दे दो, मूर्तिपूजा ऐसी करो कि, संसार भरके समस्त पर्वतोंको घोडालो, किन्तु हे भाई। सत्य सुख तो विना प्रेमके कदापि नहीं प्राप्त होता हैं।

वादमें जीतलेहु जगजाय, लेख लिखिसको हँसाय
रोवाय। वक्तृतामें गिरि देहु ढहाय, बनो मदमांहि
वेणुके भाय चालमें धरिहु देहु डुबोय। प्रेम वि०॥

वाद विवाद करके चाहे आप समस्त संसारको जीत लो, लेख चाहे इस प्रकारका लिख सको कि, चाहे जिसे हँसाना चाहो उसे हँसा दो और चाहे जिसे रुलाना चाहो उसे रुला दो वक्तृतामें संभाषणके नाले पनाले बहाकर चाहे उससे पर्वतोंको गिरवाडालो और अभिमानमें चाहे राजा वेणुके भाई बनजावो और अपनी चालसे पृथ्वीकोही पाताल पठा दो ऐसे बलवान् हो जाओ किन्तु सत्य सुख तो प्रेमके विना कदापि प्राप्त न होगा! फिर किस प्रकारसे वह प्रेम करना चाहिये? और किससे प्रेम करना चाहिये? जिससे कि वह सत्य सुख प्राप्त होता है? सो अब आप कहते हैं?

धारि हियमें हरिकी परतीत, करो सतगुरुसे साची
प्रीत। गहो ऋषि मुनि सन्तनकी रीत, तबै सुख पैहो
होय निर्भीत॥ कहे परताप सुनो प्रियलोय प्रेमविन०॥

हृदयमें हरि जो समस्त दुःखोंको हरण करनेवाला परम प्रभु है तिसकी अटल श्रद्धा रखो और सद्‌गुरुका उस प्रभुकी मूर्ति समझकर उसे सच्चा प्रेम करो, ऐसी जो ऋषि, मुनि, सन्त महात्माओंकी सनातन रीत हैं इसीको धारण करनेसे तुम्हें निर्भय सत्यसुख प्राप्त होगा। प्रताप नारायणजी कहते हैं कि, हे प्यारे लोगो! प्रेमके बिना सत्य सुख नहीं प्राप्त होता हैं। इसी कारणसे सतगुरुने कहा है कि —

प्रेम उदय जब होय मन, सतगुरुके परताप।
चिदानन्द परमात्मा, दूरसे आपहि आप॥

सद्‌गुरुको परम प्रभुकी मूर्ति जानकर जो कोई सद्‌गुरुकी भक्ति करता है उसके हृदयमें सतगुरुके प्रतापसे जब प्रेमका उदय होता है तब सच्चिदानन्द जो परम प्रभु परमात्मा है उसका दर्शन आपही आप हो जाता है। अतएव —

तजि चतुराई जगतकी, गहु सतगुरु विश्वास।
तौ निश्चय पूरण तेरि, होवे उर अभिलाष॥

हे भाई! तू अपनी संसारकी चतुराईको त्याग कर सद्‌गुरुका विश्वास धारण कर, तो तेरे मनमें जो कुछ अभिलाषा है वह अवश्य पूर्ण होगी, किन्तु, इसमें पामर मनुष्योंको यह

शंका होती है, जो संसारकी चातुरी धन्धा व्यापार छोड़ देवे तो हमारानिर्वाहही कैसे हो सकता है ? तिसके उत्तरमें आपने कहा है कि —

चीटीको कण गजहि मन, दैं नित करत सँभाल ।
ताको तजि विश्वास क्यों, उरझ्यो मायाजाल ।।

सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्राणी जो चीटी है, उसे अन्नके एक कणकी आवश्यकता है और महानसे महान् प्राणी जो हस्ती है जिसे नित्यप्रति एक मन भोजन करनेकी आवश्यकता है इत्यादि सब प्राणियोंकी जो प्रतिदिन चिन्ता करके आहार पहुंचाता है उसका विश्वास छोडकर तू इस संसार के मायाजालमें क्यों उलझा है ?।

मुक्ति खरीदन जन चले, धन ठगियाके हाट ।
परिकै अवघट घाटमें, होगये बाराबाट ।।

संसारके मनुष्य मुक्ति मोल लेनेके लिये जहां द्रव्यहरण करनेवाले तीर्थ मूर्तियोंकी दुकाने लगाकर बैठे हैं उनके बाजारमें गये। वहां मुक्ति तो न मिलसकी किन्तु, अवघटघाट अर्थात् कुमार्गमें पडकर चारों तरफ चक्कर खाते बारहघाट होगये ।

भ्रमत फिरैं भवधारमें, विन कबीरके ज्ञान ।
पढे न पावे परमगति, पंडित वेद पुरान ।।

कबीर साहब स्वयं अपने मुखारविन्दसे कथन करते हैं कि, भवसागरमें भ्रमण करनेवाले हे भाई ! बिना कबीरके ज्ञान, केवल वेद पुराणोंको पढ़ लेनेसे पंडितोंकी मुक्ति नहीं होगी क्योंकि —

बन्जारेका बैल ज्यों, पढ़ि बहु सहे कलेश ।
खांड लादि भुस खात है, विन सतगुरु उपदेश ।।

जैसे बनजारेके बैलकी पीठपर लदी तो शक्कर रहती है उसका बोझा उठाना पडता है किन्तु खानेको तो उसे भूसाही मिलता है इसी प्रकारसे पंडित लोग वेद पुराण पढनेका कष्ट तो उठाते हैं किन्तु उन्हें बिना सतगुरुके उपदेश क्रिया-कर्मोंके जालमें ही पडा रहना पडता है इसी कारणसे महात्मा निश्चलदासजीने कहा है कि —

वेदउदधि विन गुरु लखे, लागे लौन समान ।
बादर गुरुमुखद्वार ह्वै, अमृतसूँ अधिकान ।।

जैसे समुद्रके जलका स्वाद लेनेसे, लवणके समान खारा प्रतीत होता है और उसी जलकी जब बादलोंके द्वारा आकाशसे वर्षा होती है तब, अमृतसे भी विशेष मिष्ट प्रतीत होने लगता है तैसे ही, ज्ञानका समुद्र जो वेद है बिना सतगुरुके पढे उनके अर्थमें केवल क्रिया कर्मों हीके विधानका बोध प्राप्त होता है, परन्तु गुरुमुखद्वारसे उसका अर्थ श्रवण करनेसे मोक्षसे अधिक परमशान्ति प्राप्त होती है इसी कारणसे कबीर साहबने कहा है कि —

चार वेद षट्शास्त्र पढ़ि, लख्यो न सार असार।
विन विचार लादे फिरे, ज्यों खर चन्दन भार ।।

चार वेद और षट् शास्त्रोंको पढकर जिसने सार असारका कुछ विचार न किया वह उसी प्रकार है कि जैसे गधा अपनी पीठ पर चन्दनका बोझ उठाये हुये उसकी सुगन्धिको नहीं जानता है केवल भारहीके बोझका कष्ट सहन करता है इसीसे कबीर साहबने किसीकी मुंह देखी बात नहीं कही है इसीसे स्वयं आपने कहा है कि –

मारग कठिन कबीरका, धरि न सके पग कोय।
आय चले कोइ शूरमा, जा धड शीश न होय ।।

कबीरका मार्ग अर्थात् कबीर साहबने जो मार्ग अखण्ड परम शांतिप्रद प्राप्त होनेका मार्ग बताया है जिसे "कबीरपन्थ" कहते हैं उस पन्थमें पांव धरना अर्थात् जिसके नियमानुसार चलनेको पांव उठाना प्रत्येक साधारण मनुष्यका काम नहीं है उसके अनुसार तो कोई शूर वीर ही पुरुष चलनेको कमर बांधेगा जिसके धडपर अभिमान रूपी मस्तक न होगा। इसपर एक भजन भी कहा है।

गजल

आना कबीर पन्थमें, खालाका घर नहीं। आते हैं
शूर न जिन्हें, दुनियाका डर नहीं ।। टे० ।। चोरी
औ झूठ त्यागकर सच्चा सदा रहै। डाले पराई नारिणै,
बिलकुल नजर नहीं ।। कहते तो सबी हैं कि, कभी
पाप न करना। सुनते हैं न कानोंसे, आप खुद
मगर नहीं ।। बालककी भी कही हुई, वाजिब तो
होवे बात। उसको भी माननेमें, जराभर उजुर नहीं ।।
रुतवा व माल धनपै, जो करता है कुछ गरूर।
ऐसोंकी तो इस मतमें, है हरगिज गुजर नहीं ।।
कहते हैं धरमदास, साफ ये सबसे। मुक्तीका और
ठौर, कहीं सरवसर नहीं ।।

सब यहां से अर्थ लिखते हैं —

आना कबीर पन्थमें, खालाका घर नहीं।
आते हैं शूर नर जिन्हें, दुनियाका डर नहीं ।।

हे भाइयो ! कबीर पन्थमें आना सहज काम कुछ मौसीका घर नहीं है इस पन्थमें तो कोई शूरवीर नर माईके लालही आते हैं जो संसारी लोगोंके कुछ कहने सुननेका भय नहीं रखते हैं।

चोरी औ झूठ त्यागकर, सच्चा सदा रहैं।
डाले पराई नारिपै, बिलकुल नजर नहीं ।।

इस पन्थमें वही आता है जो चोरी करना और मिथ्या बोलनेका त्याग करके सदा सत्य बोलता है तथा सत्यही बातको मानता है और सत्यही काम करता है तथा परस्त्रीकी तरफ कभी भूलसे भी किञ्चिन्मात्र दृष्टि जाने नहीं देता है।

कहते तो सबी हैं कि, कभी पाप न करना।
सुनते हैं न कानोंसे, आप खुद मगर नहीं ।।

यह बात तो क्या हिन्दू ? क्या मुसलमान ? क्या ईसाई आदि सभी धर्मवाले कहते ह कि पाप न करना चाहिये, पाप बुरा है किन्तु अपने कानोंसे आप खुद अपनी कही हुई बातको नहीं सुनते हैं और चोरी, झूठ बोलना व्यभिचार, हिंसा इत्यादि नाना प्रकारके पापकर्म किया ही करते हैं। ऐसे लोग इस पन्थमें कैसे आ सकते हैं? और दूसरे इसमें एक बात और भी है कि —

बालक कि भी कही हुई, वाजिब जो होवेबात।
उसको भी माननेमें, जराभर उजुर नहीं ।।

चाहे किसी धर्म्मशास्त्रका अथवा स्वयं परमात्माहीका कहा हुआ वेदवाक्य क्यों न हो किन्तु वह असत्य हो तो उसे कबीरपन्थी कदापि न मानेंगे और एक छोटेसे बालककी भी कही हुई सत्यबातके स्वीकार करनेमें उन्हें किञ्चिन्मात्र भी विवाद नहीं है।

रुतवा न माल धनपै, जो करता है कुछ गरूर।
ऐसोंकी तो इस मतमें, है हरगिज गुजर नहीं ।।

रुतवा अर्थात् अधिकार अथवा अपनी धन संपत्ति विद्या इत्यादि पर कुछ अभिमान करता है कि मैं बडा आदमी हूं, धनवान् हूं अथवा बडा विद्वान् हूं ऐसे मनुष्यों का तो इस मतमें किञ्चिन्मात्र भी निर्वाहि नहीं है।

कहते हैं धर्म्मदास, साफ साफ ये सबसे।
मुक्तीका और ठौर; कहीं सरवसर नहीं ।।

धर्म्मदासजी साहेब अपने स्पष्ट शब्दोंमें सबसे साफ साफ कह गये हैं कि भाइयो ! जीतेजी संसारके बन्धनोंसे छुटकारा पानेका इस प्रकारका ठिकाना तो और किसी मतमें सर्वथा नहीं है। किन्तु इस मतमें प्रथम यह बात करनी पडती है कि —

मान बडाई ईरषा, तजै लोककी लाज।
तब पावे नर परमपद, मुक्तिपुरीको राज।।

कबीर पन्थमें प्रवृत्त होनेकी अभिलाषा रखनेवालेको चाहिये कि सन्मान बडाई दूसरोंकी ईर्षा तया लोकलज्जा इत्यादि समस्त त्याग देवे तब उसे ब्रह्मा विष्णु इन्द्रादिके पदसे भी श्रेष्ठ पद जो मोक्षपुरीका राज्य है सो प्राप्त होता है।

अद्‌भुत दर्शन सार यह, पढे सुने जो कोय।
लहे तेहि उर परमनिधि, सब विधि मंगल होय।।

इति श्रीमल्लालसाहिब पूज्यपाद शिष्य इन्दौर कबीर मन्दिरको भूतपूर्व आचार्य
श्री १०८ महन्त शम्भूदास साहब इन्दौर निवासी विरचित सारदर्शन
करुणासिन्धु कबीरसाहेब कृत सारसाखियोंकी टीका समाप्त।

हमारे अन्य कबीरपंथी प्रकाशन

कबीरबीजक –(कबीर साहबका मुख्य ग्रन्थ) कबीरपंथी महात्मा पूरनसाहब–कबीरसाहबके समान हो गये, उन्हीं महात्माकी टीका-सहित ... ...

नं० १ कबीरसागर –(प्रथम खंड) ज्ञानसागर–(लोक परलोकका वर्णन कबीर साहब के पृथ्वी पर प्रकट होनेकी कथा तथा ज्ञान वैराग्य और योगके उपदेशका भण्डार) ... ...

नं० २ कबीरसागर–(द्वितीय खंड) अनुरागसागर–यह पुस्तक-३०-३५ प्रतियों द्वारा शुद्ध करके और पं० श्री हजूर उग्रनाम साहिबके यहाँकी प्रतिसे मिलाकर छापा गया है। स्थान स्थानपर योग्य टिप्पणी दी गयी है ... ...

नं० ३ कबीरसागर–(तृतीय खंड) अम्बुसागर, विवेकसागर और सर्वज्ञसागर–संयुक्त (इक्कीस युगकी कथा कबीर साहिबका इक्कीसों युगोंमें प्रकट होकर अधिकारी जीवोंको उपदेश देने और उन युगोंके आश्चर्यमय स्वरूपका वर्णन) और सर्वज्ञसागरमें सृष्टि उत्पत्तिका वर्णन है ... ...

नं० ४ कबीरसागर–(चतुर्थ खंड बोधसागर) प्रथम भाग-ज्ञान-प्रकाश, अमरसिंहबोध और वीरसिंहबोध (कबीर साहिबका युगयुगमें पृथ्वीपर प्रकट होकर अधिकारी जीवोंको बोध देकर मोक्ष प्राप्त कराने की कथा) ... ...

नं० ५ कबीरसागर–(चतुर्थखंडान्तर्गत बोधसागर) द्वितीयभाग-गोपालबोध, जगजीवनबोध, गरुडबोध हनुमानबोध, और लक्ष्मणबोध संयुक्त ... ...

नं० ६ बोधसागर–महंमदबोध काफिरबोध सुलतानबोध

नं० ७ बोधसागर–निरञ्जनबोध, ज्ञानबोध, भवतारणबोध, मुक्ति-बोध, चौकास्वरोदय, अलिफनामा, कबीरवानी, कर्मबोध और अमरमूल

नं० ८ बोधसागर–उग्रगीता, ज्ञानस्थिति, संतोषबोध, कायापांजी और पञ्चमुद्रा ... ...

नं० ९ बोधसागर–आत्मबोध, जैनधर्मबोध, स्वयंवेदबोध और धर्मबोध ... ...

नं० १० बोधसागर–कमालबोध, श्वासगुन्जारबोध, आगमनिगम-बोध, सुमिरनबोध ... ...

नं० ११ बोधसागर—कबीरचरित्रबोध, गुरुमाहात्म्य और जीव-धर्मबोध ... ...

कबीरभजनमाला—महन्त शम्भुदासजीकृत कबीरपंथी उत्तम उत्तम भजनोंका संग्रह ... ...

कबीर उपदेश-इसको श्रीमहन्त दीनादास साहबकी आज्ञानुसार ज्ञान-प्रकाश व मुखनिधान ग्रंथोंसे उत्तमोत्तम ४५ वाणियोंका संग्रह कर वेगमसरायवासी ठाकुरदासजीने बनाया है ...

निर्णयसार (कबीरपन्थी) महात्मा पूरनसाहब कृत वेदके सिद्धांतसे जीव ही को मायारहित होनेपर परब्रह्मरूप बताया है वह सदा निर्लेप नित्य है। जो अज्ञानी देहही को सबकुछ मानते हैं उनके भ्रम गुरुशिष्यों के प्रश्नोत्तरों से दूर किये हैं ... ...

बालउपदेश—अर्थात् कबीरसाहबका ककहरा—कबीरसाहबके जीवन चरित्र सहित । उत्तमोत्तम चेतावनीके छन्द और साखियां

राजनीतिधर्मग्रन्थ—(कबीरपन्थीसाधुनिर्मित) इसमें मांसमद्यादि खंडन अहिंसा, कर्ममार्ग, उपासना, भक्तिमार्ग, योगमार्ग, ब्रह्मज्ञान, सत्यज्ञान रहनी और जीवनमुक्तस्थितिका वर्णन है अजिल्द ...

सत्यकबीरकी साखी—कबीरपरिचयकी साखी सहित । १०८ अग्र और ३५०० से भी अधिक साखियां हैं । कबीर परिचयकी साखी ३५२ हैं

सत्यनाम कबीरपंथी बालोपदेश अर्थात् सद्गुरु कबीर साहबके सात ककहरोंमें से (३) ककहरोंका संग्रह ... ...

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बँक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

